डॉ.अशोक शर्मा

सीता के जाने के बाद

राम

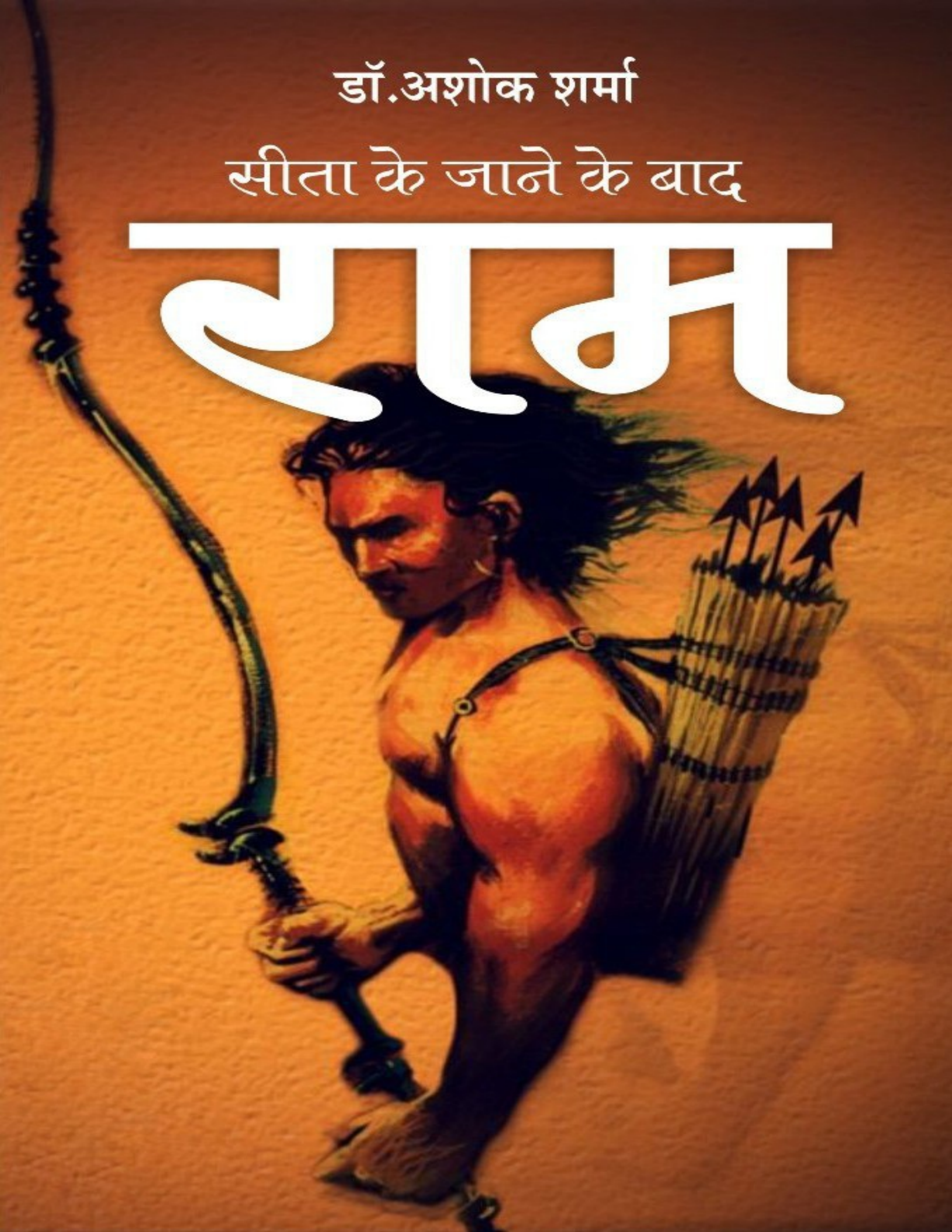

VISIT…

डॉ. अशोक शर्मा

परिचय

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया से सेवानिवृत्त डॉ. अशोक शर्मा ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को केन्द्र में रख कर उपन्यास लिखने के लिये जाने जाते हैं। आपके पूर्व प्रकाशित दो उपन्यास 'कृष्ण : अन्तिम दिनों में' और 'सीता सोचती थीं' प्रस्तुति की तथ्य परक दृष्टि तथा पात्र गठन की विशेषता के कारण जाने जाते हैं। जिसमें लेखक डॉ. अशोक शर्मा सभी पात्रों को समुचित न्याय करने में सफल रहे हैं।

'कृष्ण : अन्तिम दिनों में' के अंग्रेजी अनुवाद 'Krishna : In His Last Days' के साथ-साथ आपके दो काव्य संग्रह 'श्री कृष्ण शरणम्' तथा 'मेरे पंख मेरा आकाश' भी प्रकाशित है।

'सीता के जाने के बाद राम' उपन्यास में भी पात्र गठन में मर्यादा पुरषोत्तम राम के साथ-साथ अन्य सभी पात्रों के कद के साथ समझौता नहीं हुआ है। साथ ही रोचकता तथा पठनीयता बनी भी बनी रहती है।

संपर्वâ -

81, विनायक पुरम, विकास नगर, लखनऊ - 226022

मो०: 9044436325, 7905558685

E-स्वग्त् : sharmaashok1948@gmail.com

सीता के जाने के बाद राम

उपन्यास

डॉ. अशोक शर्मा

एम०एससी०, प्रफीशियन्सी इनफ्रेंच

पीएच०डी० (गणित)

अंजुमन प्रकाशन

इलाहाबाद

आत्म-कथ्य

ध्यान, पूजा, मन्त्रों का उच्चारण या पवित्र ग्रन्थों का पाठ, हमारा ईश्वर से संवाद करने का प्रयास ही तो है।

उसकी अनुभूति शब्दातीत है और उसका आशीष अहोभाव जगाता है। उसे नकारने का हर प्रयास उसके होने का प्रमाण है। उसको नकारने के प्रयास, उससे बचने के प्रयास भी तो हो सकते हैं।

उसके कार्यों का औचित्य नापने का पैमाना किसी के पास है क्या?

अन्धकार के लिये भी उसे धन्यवाद, अन्यथा प्रकाश से परिचय कैसे हो पाता।

मानव के शरीर में उसकी यात्रा कई चरणों में हुई। राम और कृष्ण की जीवन यात्राएं भी उसकी इसी यात्रा का भाग थीं। जिन्होंने भारतीय सांस्कृतिक विरासत पर प्रश्नचिन्ह खड़े करने और उनका उपहास करने का ही मन बना रखा है, वे स्वाभाविक ही भारतीय अस्मिता के प्रतीक, राम और कृष्ण पर भी प्रश्न चिन्ह लगाते रहने और तरह-तरह के काल्पनिक प्रसंगों का सहारा लेकर उन पर कीचड़ उछालने को तथाकथित आधुनिकता और धर्म निरपेक्षता का प्रतीक बनाते रहने के लिये अभिशप्त हैं।

कई बार तो वे सारे तथ्यों को किनारे करते हुए, इन्हें गल्प कहकर अस्वीकार ही कर देते हैं, किन्तु दूसरे धर्मों के सम्बन्ध में उनकी यह छिद्रान्वेषी दृष्टि बिल्कुल ही बदल जाती है।

एक बात कहना चाहूँगा। कभी वह समय था जब सभी रोगों का इलाज एक ही चिकित्सक किया करता था, किन्तु आज विज्ञान की उन्नति के साथ शरीर के विभिन्न अंगों या विभिन्न कष्टों के लिये अलग-अलग विशेषज्ञ डॉक्टर उपलब्ध हैं।

इसी तरह हिन्दू धर्म ने भी, जिसका आध्यात्मिक ज्ञान बहुत उच्च कोटि का था, जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों के लिये ईश्वर की शक्तियों का विभिन्न रूपों में मानवीकरण करने का प्रयास किया और विद्या के लिये सरस्वती, धन के लिये लक्ष्मी, शक्ति के लिये दुर्गा, शिवत्व के लिये शिव, सृजन के लिये बृह्मा, पालन -पोषण करने के लिये विष्णु आदि की अवधारणाएँ दीं!

आप देखिये कि सृजन को बहुत अधिक बुद्धि और सोच विचार का कार्य समझकर बृह्मा के पाँच सिरों और पालन-पोषण को बड़ा कार्य समझकर विष्णु के चार हाथों की कल्पना की गयी। दुर्गा की आठ भुजाएं, सरस्वती के हाथ में वीणा और लक्ष्मी के कमल पर होने आदि का औचित्य भी सहज ही समझा जा सकता है। उनके लिये अलग-अलग स्तुतियाँ और अलग-अलग मंत्र भी इसी दिशा में एक प्रयास हैं।

उन्होंने इनकी मूर्तियाँ, इनके चित्र बनाये, उन्हें सजाया। उन पर पुष्प अर्पित किये,

आरती की, उन्हें पूजा। कुछ लोग हनुमान जी या अपने किसी देवी, देवता का चित्र अपनी जेब में या अपने पर्स में भी रखते हैं क्योंकि उनका धर्म उन्हें ईश्वर को सखा-भाव से उपासना करने की, उससे प्रेम करने की छूट देता है। क्या आपने किसी गुलाम को अपने मालिक की मूर्ति बनाकर सजाते हुए या उसका चित्र, आदर और प्रेम से अपनी जेब में रखते हुये देखा हैं?

हिन्दू धर्म में ध्यान की स्थिति में होने का बहुत अधिक महत्व है। जो इस दिशा में प्रयास करना चाहते हैं, ये मूर्तियाँ या चित्र बहुधा उनके इस प्रयास में सहायक भी होते हैं। हिन्दू जानते हैं कि ये मूर्तियाँ या चित्र ईश्वर तक पहुँचने के निमित्त मात्र हैं, ईश्वर नहीं, अन्यथा वे हर वर्ष लक्ष्मी-गणेश, दुर्गा या गणपति की पुरानी मूर्तियों को हटाकर नयी मूर्तियाँ नहीं लाते।

हिन्दुओं के तैंतीस करोड़ देवी-देवता बताना भी धर्म का उपहास ही है। कोई भी व्यक्ति, मात्र तैंतीस देवी देवताओं के नाम भी नहीं बता सकता।

अन्य धर्मों की भाँति हिन्दू धर्म में भी ईश्वर या ब्रह्म तो एक ही है। संस्कृत में तो उक्ति ही है, 'एको ब्रम्ह, द्वितीयो नास्ति'। सच तो यह है कि किसी बहुत पुराने बरगद के वृक्ष के किसी भी तने का सहारा लेने वाला, उसी एक बरगद के सहारे ही तो होता है। इसमें भ्रम या विवाद कहाँ हो सकता है।

एक बात और; डा० राम मनोहर लोहिया ने एक बार कहा था,

'राम का जन्म हुआ था या नहीं, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि राम का नाम लेकर करोड़ों लोग जीते हैं। अपने सुख में उसे भागीदार बनाते हैं और दु:ख में उसके सहारे जिन्दा रहते हैं।'

यह भावना उनके एतिहासिक सत्य होने से अधिक मूल्यवान है। वे आगे कहते हैं -

'राम, उत्तर से दक्षिण तथा कृष्ण, पूर्व से पश्चिम की धुरी पर घूमे। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि देश को उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक एक करना ही राम और कृष्ण का धर्म था।'

राम की पूर्णता, उनके मर्यादित व्यक्तित्व में, कृष्ण की, उनकी उन्मुक्तता एवं शिव की, उनके असीमित व्यक्तित्व में है।

और अब इस पुस्तक की बात। कुछ दिनों से मन विषय की तलाश में भटक रहा था। एक दिन, रात में जब सारे कार्यों के बाद बिस्तर पर सोने का प्रयास कर रहा था, तभी लगा कि सीता के प्रयाण के बाद राम किन मन:स्थितियों से होकर गुजरे होंगे, इसे कागज पर उतारने का प्रयास क्यों नहीं? राम की मन:स्थिति के चित्रण की बात आते ही मन ऐसी अनुभूति से भर उठा, जिसे मैं शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता और यह अनुभूति पूरे लेखन के क्षणों में बनी रही। ऐसा लगता रहा जैसे मैं उसी समय में और उन्हीं के साथ कहीं जी रहा हूँ। इसे सौभाग्य की अनुभूति भी कह सकते हैं।

वरिष्ठ साहित्यकार श्री शिव नारायण मिश्र (गोसाईगंज, लखनऊ) के प्रति विशेष आभार और इस आत्म-कथ्य को विस्तार न देकर, इसे पढ़ने में आपको भी उस समय और उनके साथ जीने की अनुभूतियाँ हों, इस कामना के साथ..

- डॉ. अशोक शर्मा

अनुक्रम

1 स्मृतियों में
2 नारी विमर्श
3 भावनाओं के मध्य
4 जन-मानस
5 वो आये तो
6 यह पक्ष भी
7 धूप भी, छायाएँ भी
8 मयतनयाएँ
9 नदी का किनारा और वे
10 एक और दीपावली
11 एक सुबह ऐसी भी
12 और कैकेयी
13 कुछ विविध
14 समय ही तो
15 प्रयाण की ओर
16 और बस

परिशिष्ट

1. स्मृतियों में

सीता जा चुकी थीं, किन्तु सच तो यह था कि वे शरीर से भले ही नहीं थीं, किन्तु लोगों के हृदय में उनका साम्राज्य था।

दरबार लगा हुआ था। कैकेयी के मायके, केकय देश से आने वाले समाचार चिन्तित करने वाले थे। गन्धर्वों ने वहाँ बहुत उत्पात मचा रखा था और वर्तमान नरेश, कैकेयी का भाई युधाजित, उनका उचित प्रतिकार नहीं कर पा रहा था। अयोध्या का राज्य केकय की सहायता करना चाहता था, किन्तु अभी तक वहाँ से कोई सहायता माँगी नहीं गयी थी, अतः दरबार ने इस सम्बन्ध प्रतीक्षा की बात की। कुछ अन्य समाचार भी थे, उनकी समीक्षा भी हुई।

सीता के प्रयाण के बाद से जनकपुरी मिथिला से सम्बन्धों में वह ऊष्मा नहीं रह गयी थी। उन सम्बन्धों पर भी इस सभा में चर्चा हुई और स्वाभाविक ही अश्वमेध यज्ञ और सीता की बातें भी आयीं।

सीता की बातें राम के हृदय में पीड़ा भर देती थीं। चर्चाएं समाप्त हुई तो राम उठ पड़े। बाहर आये तो शाम हो चुकी थी। मन कुछ उदास सा हो रहा था। वे नित्य के विपरीत अपने कक्ष में जाने के स्थान पर, महल की सीढ़ियों की ओर बढ़ गये।

छत पर पहुँचे तो हवा ठंढी और कुछ तेज थी। उन्होंने खड़े होकर आसमान की ओर ऐसे देखा जैसे कुछ खोज रहे हों।

फिर उस ओर देखा जिधर वह स्थान था, जिस तक प्रयाण से पूर्व सीता के पदचिन्ह मिले थे। कुछ देर तक वे अपलक उधर देखते रहे, फिर सिर झुकाकर धीमे कदमों से चलते हुए छत के उस किनारे पर आ गये जहाँ मिट्टी के पात्रों में फूलों के बहुत से पौधे लगे हुए थे। सीता जब थीं, तब उन्होंनें इन पात्रों में फूलों के पौधे लगवाये थे। वे पौधों का बहुत ध्यान रखती थीं। उनके जाने के बाद राम अक्सर इन पौधों के पास आकर खड़े हो जाते और इनमें खिले फूलों को निहारते और छूते थे। यह उन्हें सीता की याद और एक सुखद-सी अनुभूति कराता था।

आज वे जब इस ओर आये तो कुछ देर तक खड़े इन्हें देखते रहे, फिर झुककर इनमें से एक से, एक फूल तोड़ा और बहुत धीरे से उसे अपनी दोनों हथेलियों के बीच में रखकर उसके स्पर्श को महसूस करते हुए छत पर बने कक्ष में आ गये।

यह शेष भवन से थोड़ा अलग था और सीता के जाने के बाद से अक्सर जब सीता की स्मृतियाँ घेरने लगतीं, वे एकान्त खोजते हुए इस कक्ष में आ जाते। वे बहुत अच्छी वीणा बजाते थे और अपनी वीणा उन्होंने इसी कक्ष मे रख रखी थी।

राम कक्ष में आये तो कुछ देर तक यूँ ही बैठे रहे, फिर उठे, हथेली के फूल को बहुत सावधानी से एक ओर रखकर वीणा के पास बैठ कर उसके तारों को छेड़ने लगे। थोड़ी देर बाद वीणा उठायी, गोद में रखी, दीवार से पीठ और सिर टिकाकर बैठ गये। मन में सीता और हाथ में वीणा लिये राम ने नेत्र बन्द किये और वीणा के तारों पर उनकी उँगलियाँ खेलने लगीं। कक्ष जैसे

दैवीय संगीत से भर उठा। वे बहुत देर तक यूँ ही नेत्र बन्द किये उस संगीत में डूबे रहे।

धीरे-धीरे मन जैसे कहीं खोने लगा। वीणा पर चलने वाली उँगलियों की गति कम होने लगी, फिर धीरे-धीरे रुक गयी। कुछ देर तक वे वैसे ही बैठे रहे और फिर पता नहीं कब उनकी आँख लग गयी और धीरे-धीरे एक स्वप्न उनकी आँखों में भर गया।

यह एक बहुत ही सुन्दर स्थान था, जहाँ बहुत से वृक्ष, फूल, और चिड़ियाँ थीं, साथ ही बहुत ही खूबसूरत और रंग-बिरंगी परियाँ भी और उनके मध्य एक सुनहरे रंग की परी थी, जो शायद उनकी राजकुमारी थी। उसने एक बहुत खूबसूरत मुकुट पहन रखा था, जिसमें जड़े हुए रत्न बहुत अधिक चमक रहे थे। वे सब बहुत अधिक हँस रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे हँसना उनका स्वभाव ही हो। तभी वह सुनहरी परी हँसते हुए आगे आयी, सभी परियाँ उसके पीछे हो गयीं। सुनहरी परी वहाँ खिले फूलों के पास बार-बार ऐसे रुक रही थी, जैसे उनसे बातें कर रही हो। जिस फूल के पास भी ठहरकर वह उससे बातें करती, उसे धीरे से सहला भी देती और उस फूल पर उसके स्वाभाविक रंग के अतिरिक्त कुछ चमक-सी भी आ जाती।

तभी एक चिड़िया आयी और उसके हाथ पर बैठ गयी।

'क्या हुआ?' सुनहरी परी ने चिड़िया से पूछा

'वहाँ उस तरफ एक नया पक्षी आया है, जैसा पहले कभी नहीं देखा।' चिड़िया ने कहा।

'कैसा है वह?'

'हम सबसे बड़ा है और..'

'और क्या?'

'बहुत खूबसूरत भी।'

'अच्छा कहाँ? चलो देखते हैं।' सुनहरी परी ने कहा, और वे चल पड़ीं।

आगे-आगे वह चिड़िया, उसके पीछे सुनहरी परी और उसके पीछे अन्य परियाँ।

नया पक्षी, जो एक पेड़ की डाल पर बैठा था, उन सबको अपनी ओर आते देख कर चौंका। कुछ सावधान होकर उड़ने को हुआ, किन्तु परियों की राजकुमारी ने उसे रुकने का संकेत किया।

पक्षी रुक गया। सुनहरी परी ने देखा सचमुच, वह पक्षी आम पक्षियों से कुछ बड़ा, रंग-बिरंगा और बहुत खूबसूरत था।

'तुम यहाँ कैसे आये?' परी ने पूछा

'बस ऐसे ही, उड़ता हुआ आ गया।' पक्षी ने कहा।

'कहाँ से आये हो?'

'दूर से।'

'जहाँ तुम रहते हो, वह जगह कैसी है?'

'बहुत सुन्दर,'

'हमारे इस परी लोक से भी अधिक?'

'यह तो मैं नहीं कहता, पर इससे अलग अवश्य है।'

सुनहरी परी के मन में उस स्थान की देखने की इच्छा जाग उठी। उसने पक्षी से पूछा,

'क्या तुम मुझे वह जगह दिखाओगे?'

'हाँ, क्यों नहीं! आओ।' पक्षी ने कहा और अपने स्थान की ओर उड़ चला। सुनहरी परी

उसके पीछे-पीछे उड़ने लगी। काफी दूर उड़ने के बाद पक्षी का नगर दिखाई देने लगा। वे कुछ देर तक उस नगर के ऊपर ही उड़ते रहे। परी उड़ते हुए उस सारे नगर को देख लेना चाहती थी।

नगर को अधिक पास से देख लेने की उत्सुकता में परी काफी नीचे आ गयी, तभी अचानक किसी व्याध का चलाया हुआ एक तीर आकर उसके सीने में धँस गया। परी का सीना खून से भर गया। वह पीड़ा से चीखती हुई नीचे आ गिरी, और यह उसका दुर्भाग्य ही था कि जहाँ वह गिरी उस स्थान पर जलती हुई लकड़ियों का एक ढेर था। पक्षी ने यह देखा और पंख फड़फड़ाता और चीखता हुआ परी के चारों ओर मंडराने लगा।

राम चौंककर उठे। कैसा स्वप्न था यह? सारे शरीर में सिहरन भर गयी। उन्हें लगा जैसे सुनहरी परी, सीता और पक्षी वे स्वयं थे और वह तीर चलाने वाला व्याध...।

राम को सीता के चरित्र पर उँगली उठाने वालों का स्मरण हो आया, अधरों पर पीड़ा भरी मुस्कान उभरी; 'जीवन में व्याधों की कमी नहीं,' उन्होंने मन में कहा, साथ ही उनके माथे पर लकीरें उभर आयीं, शायद रावण का भी स्मरण हो आया था। कौन था रावण?

2. नारी विमर्श

अपनी पराजय पर लज्जित, ग्लानि से भरा हुआ और शोकग्रस्त दैत्यपति सुमाली, समुद्र के किनारे, एक बड़ी चट्टान के निकट अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ बैठा हुआ था।

वह यहाँ रहकर भी लंका और अपने पुराने वैभव को भूला नहीं था। कभी उसने अपने दो भाइयों, माल्यवान और माली के साथ मिलकर लंका को इतना वैभवशाली और समृद्ध बनाया था, और उसमें इतना स्वर्ण-भण्डार था कि उसे सोने की लंका कहा जाने लगा था।

सुकेश और देववती के पुत्र, ये तीनों भाई बहुत वीर और पराक्रमी थे, किन्तु सागर तट पर स्थित एक सोने की खान पर वर्चस्व को लेकर हुये देवासुर-संग्राम में माली के मारे जाने के बाद, पराजित सुमाली अपने बचे हुए साथियों के साथ समुद्र में दूर स्थित एक द्वीप पर जाकर रहने लगा था, किन्तु यह स्थान भी देवताओं की पहुँच से बहुत दूर नहीं था। सुमाली कुछ दिनों तक वहाँ रहा, फिर वहाँ से बहुत अधिक दूर एक और द्वीप पर रहने चला गया। यह बहुत अधिक दूर और बहुत गहरे समुद्र से घिरा हुआ था।

सुमाली ने लंका की दिशा की ओर देखा। उसके मस्तिष्क में पता नहीं क्या-क्या आ रहा था। पराजित और पीड़ित दैत्यपति ने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

दक्ष की तीन पुत्रियों दिति, अदित और दनु का ऋषि कश्यप से विवाह हुआ था। उनकी सन्तानें क्रमशः दैत्य, देव और दानव कहलायीं। दैत्यों और दानवों में आपस में विद्वेष नहीं था किन्तु अदिति के पुत्र देवताओं से उनका, सामाजिक चिन्तन और संस्कारों के साथ ही सम्पदा और राज्यों की सीमाओं को लेकर भी अक्सर संघर्ष होता रहता था।

सुमाली के लंका से पलायन के बाद देवों ने लंका पर अधिकार कर उसे विश्रवा ऋषि के पुत्र कुबेर को अपना प्रतिनिधि बना कर सौंप दिया था। पुलस्त्य ऋषि के पुत्र विश्रवा विद्वान, तेजस्वी, शीलवान व भोगों में अनासक्त और तपस्वी थे। कुबेर इनका वीर और पराक्रमी पुत्र था। लंका में उसे सुमाली और उसके भाइयों द्वारा एकत्रित किया हुआ इतना अधिक धन प्राप्त हुआ था कि कुबेर को, धन का देवता, कहा जाने लगा था।

यह सब कुछ, और अपनी पराजय याद करते हुये क्रोध और ग्लानि से सुमाली की आँखें जलने लगीं। वह आँखें बन्द नहीं रख सका। उसने आँखें खोलीं और समुद्र की ओर निहारा। अभी भोर हुई ही थी। सूरज समुद्र से ऊपर उठ रहा था और लाल रंग समुद्र के पानी पर बिखरा हुआ था। सुमाली को लगा, यह लालिमा उसके नेत्रों में भर उठी है। उसने अपने दल की ओर निहारा और आवाज दी-

'सुबाहु!'

सुबाहु, सुमाली का अति विश्वासपात्र था। वह उपस्थित हुआ।

'दैत्यपति, आदेश दें!'' उसने कहा।

'सुबाहु, क्या तुमने विचार किया, हम कब तक अपने साम्राज्य को खोकर यूँ भगोड़ों सा

जीवन व्यतीत करते रहेंगे और कुबेर वहाँ शासन करता रहेगा।'

'दैत्यपति, कुबेर बहुत पराक्रमी और तेजस्वी हैं।'

'क्या हम दैत्यों में पराक्रम और तेज की कमी है सुबाहु?'

'नहीं, किन्तु कुबेर में कुछ विशेष है दैत्यपति।'

'तुम किस ओर इंगित कर रहे हो, सुबाहु, स्पष्ट क्यों नहीं कहते?'

'वह प्रजापति ब्रह्मा के पौत्र और ऋषि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा का पुत्र है।'

बात सुमाली के हृदय में चुभ गयी।

'तो...!' उसने कहा। उसका स्वर बहुत भारी हो गया था। सुबाहु कहना चाहता था कि विश्रवा का पुत्र होना विशेष तो है ही किन्तु वह अब उत्तर नहीं दे सका, चुप रह गया। कुछ देर तक विचारमग्न और शान्त रहने के बाद सुमाली उठ खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही सभी दैत्य खड़े हो गये और वह सभा वहीं समाप्त हो गयी।

सुमाली अपने महल तक पहुँचा। तब तक उसके चेहरे का तनाव कुछ कम हो चुका था और उसके मुख से ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह किसी निर्णय पर पहुँच चुका है। महल के भीतरी कक्ष में पहुँचकर उसने एक दासी से अपनी कन्या कैकसी को बुलाने के लिये कहा।

प्रातःकाल के इस समय कैकसी अपने दैनिक कार्यों में व्यस्त थी। पिता के अचानक बुलावे से वह थोड़ी अचम्भित हुई, किन्तु अपने कार्य छोड़कर पिता के सम्मुख उपस्थित हुई।

'प्रणाम तात!' कैकसी ने सुमाली का अभिवादन किया।

'ओह कैकसी! पुत्री आओ,' कहकर सुमाली लगभग उठ खड़ा हुआ और कैकसी को अपने सम्मुख आसन पर बैठने का संकेत किया। पिता द्वारा इस प्रकार स्वागत उसे पुनः अचम्भित कर गया। वह उनके स्वभाव और चिन्ताओं से परिचित थी। वह बैठी तो सुमाली ने कहा,

'कैकसी!'

'तात!'

'कैकसी, मैंने तुम्हें एक विशेष मंत्रणा के लिये बुलाया है।'

कैकसी एक बार पुनः विस्मित हो उठी। पिता के पास मंत्रणा करने के लिये उनके मंत्रीगण थे, माँ केतुमती थीं और आज तक तो कभी भी पिता ने उसे किसी मंत्रणा में शामिल भी नहीं किया था।

'तात!' कह कर कैकसी सुमाली की ओर देखने लगी।

'पुत्री, तुमने लंका में अपने कुल का वैभव देखा है।'

'हाँ।'

'और आज हमारी इस स्थिति को भी तुम देख रही हो।'

'हाँ।'

'कैकसी, क्या हमें अपना राज्य, अपना वैभव, अपनी लंका प्राप्त करने के लिये अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर भी प्रयास नहीं करने चाहिये? क्या हमें अपनी इस स्थिति को स्वीकार कर चुपचाप बैठ जाना चाहिये?'

'नहीं, हम चुप नहीं बैठ सकते।' कैकसी ने कहा।

'हाँ कैकसी, यह दैत्यों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।'

'हाँ, तात।'

‘इसके लिए यदि हममें से किसी को कुछ त्याग करना पड़े तो?' सुमाली ने प्रश्न किया।

‘इसके लिये जीवन का बलिदान भी कोई अर्थ नहीं रखता।'

‘पुत्री मुझे तुमसे ऐसे ही उत्तर की आशा थी।' सुमाली ने कहा।

‘तात, दैत्यकुल को पुनः प्रतिष्ठित करने में यदि मेरी भी कोई भूमिका हो तो मुझे गर्व होगा।'

कैकसी के इस उत्तर से सुमाली कुछ क्षणों के लिये बहुत गम्भीर और शान्त हो गया, फिर बोला-

‘कैकसी, मेरे मस्तिष्क में एक योजना है, और उसमें तुम्हारी भूमिका ही प्रमुख रहने वाली है।'

‘शीघ्र कहें, मैं प्रस्तुत हूँ।'

‘कैकसी, लंका पर इस समय जिसका आधिपत्य है, वह कुबेर, अत्यधिक पराक्रमी और तेजस्वी है; हमको उससे टकराने के लिये वैसा ही योद्धा चाहिये।'

‘हाँ।'

‘और वह तुम दे सकती हो।'

सुमाली की इस बात पर कैकसी अवाक रह गयी। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसने सुमाली के मुख की ओर देखा। उस पर बहुत अधिक कठोरता के भाव थे। उसने साहस कर पूछा,

‘वह कैसे?'

‘कैकसी, कुबेर जो इतना पराक्रमी और तेजस्वी है, उसका कारण यह भी है कि वह प्रजापिता ब्रह्मा का प्रपौत्र और विश्रवा का पुत्र है।'

‘हाँ, तात।'

‘तो विश्रवा का ऐसा दूसरा पुत्र जो कुबेर से भी अधिक पराक्रमी, तेजस्वी और वीर तो हो ही, हम दैत्यों के पक्ष में कुबेर से युद्ध भी करे, तुम्हीं दे सकती हो।'

सुमाली की इस बात का जो अर्थ कैकसी की समझ में आया, उससे वह एक बार काँप सी गयी, किन्तु फिर भी उसे लगा कि नहीं, वही गलत समझी होगी, पिता की बात का यह अर्थ नहीं हो सकता, अतः उसने साहस बटोरकर पूछा,

‘अर्थात?'

सुमाली ने कैकसी की इस बात पर उसकी ओर देखा। कैकसी के मुख पर उसके भाव सहज ही पढ़े जा सकते थे। सुमाली का मन कुछ पलों के लिये विचलित हुआ किन्तु कैकसी से इसी प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा उसे पहले ही थी और वह कुछ निश्चय करके ही आया था, अतः उसने अपने मन को दृढ़ किया और बोला,

‘तुम्हें विश्रवा से यह पुत्र प्राप्त करना होगा।'

कैकसी विवर्ण हो गई। उसे एक पिता-तुल्य व्यक्ति की भार्या बनना होगा। उससे प्राण माँग लिये जाते तो वह सहर्ष दे देती, तब उसे रोज-रोज मरना नहीं होता। कैकसी ने सुमाली की ओर देखा, फिर शून्य की ओर देखा। उसके मुख से लग रहा था कि वह अभी रो देगी, किन्तु नेत्रों में अश्रु लिये कैकसी हँस पड़ी।

सुमाली जानता था, कि कैकसी को यह प्रस्ताव बहुत अधिक आहत करेगा। उसे आशा

थी कि इसे सुनकर कैकसी बुरी तरह से रो पड़ेगी। सुमाली इसके लिये तैयार था, किन्तु यह हँसी उसे अन्दर तक चीर गई। वह कैकसी के सम्मुख बैठा नहीं रह सका; उठा और कक्ष से बाहर निकल गया।

कैकसी ने सुमाली का जाना देखा, एक बार पुनः शून्य की ओर देखा और फिर दोनों हाथों में अपना वस्त्र लेकर, उसे मुख पर रखकर रोने लगी। जी भरकर रो लेने के बाद उसने चेहरे को पोंछा और धीरे-धीरे चलते हुए कक्ष से बाहर निकल गयी।

कैकसी वहाँ से चलकर अपने कक्ष में आकर बैठ गयी। वह सोच नहीं पा रही थी कि अपनी पीड़ा किससे कहे। माँ से कह सकती थी, किन्तु वे पिता के मत से इतर शायद ही कुछ कह पायें। कैकसी को अपनी सहेली मणि की याद आयी। उससे कैकसी की बहुत अधिक घनिष्ठता तो थी ही, वह समझदार भी बहुत थी। कैकसी को लग रहा था जैसे उसकी सोचने समझने की शक्ति समाप्त हो गयी है। उसने एक परिचारिका से कहकर मणि को बुलवाया। मणि आई। कैकसी के चेहरे पर आँसू सूखे हुये थे। वह परेशान हो गयी।

'क्या हुआ?' मणि ने कहा।

'तात ने बुलाया था,' कैकसी ने कहा।

'फिर?'

कैकसी ने सारा वृत्तान्त सुनाया। विश्रवा मुनि से पुत्र प्राप्त करने के प्रस्ताव पर मणि सन्न रह गयी।

'ओह!' उसने एक गहरी साँस ली फिर बोली

'तू मना नहीं कर सकती?'

मणि को आने में जितनी देर हुई थी, उतनी देर में कैकसी पता नहीं कितना कुछ सोच चुकी थी।

'नहीं कर सकती।' उसने कहा।

'क्यों?'

'दैत्य-कुल की प्रतिष्ठा और वैभव का प्रश्न है और फिर तात की इच्छा भी...!'

'सिर्फ इच्छा?'

इस प्रश्न पर कैकसी मौन रह गयी। उसके इस मौन पर मणि ने एक लम्बी सी 'हूँ' की, फिर बोली,

'इस कार्य के लिये तू ही क्यों?'

इतने दुख में भी कैकसी को परिहास सूझा-

'तू जायेगी उस मुनि के पास? जा चली जा, मैं तात से कह दूँगी।'

बात हँसी में ही कही गयी थी, पर राजकुमारी ने कही थी। मणि ऊपर से नीचे तक काँप गयी, वह केवल इतना ही कह सकी

'म..म..मैं' मणि की वाणी का प्रवाह टूट गया था।

'परिहास कर रही हूँ मणि, मैं तेरी बलि कभी नहीं चढ़ने दे सकती।'

मणि प्रकृतस्थ हुई पर 'बलि' शब्द ने उसे बड़ा तीव्र झटका दिया। 'बलि'- सचमुच यह 'बलि' ही तो है, उसने सोचा।

'क्या सोच रही है मणि?' कैकसी ने पूछा।

‘सचमुच यह कार्य बलि चढ़ना ही है,' मणि ने कहा।

‘हाँ, और फिर जितना बड़ा कार्य है उतनी ही बड़ी बलि भी तो देनी ही पड़ेगी।'

‘पर तू ही क्यों?' मणि ने फिर पूछा।

‘तू ठीक कह रही है, मणि; इतनी कुमारियों के होते हुए, यह राजकुमारी ही क्यों? पर मणि क्या एक बात का उत्तर तू दे सकती है?'

‘क्या?'

‘मैं ही क्यों नहीं? जहाँ बलिदान की बात हो, वहाँ राजपरिवार पहले क्यों नहीं?'

इस प्रश्न के उत्तर में मणि मौन हो गयी।

कुछ देर तक वहाँ मौन छाया रहा! फिर कैकसी बोली

‘मणि एक बात बता!'

‘क्या?'

‘दैत्य कुल की प्रतिष्ठा और वैभव वापस लाने में मेरी महती भूमिका होगी। यह अति सौभाग्य और एक पिता तुल्य व्यक्ति की भार्या बनने का अति दुर्भाग्य, दोनों ही मुझे जीने हैं, मैं हँसूं या रोऊँ?' कहकर कैकसी बहुत ही दु:ख भरी हँसी हँस पड़ी। सिर को झटका और फिर उठकर दीवार पर सिर टिकाकर फफक पड़ी।

मणि उसके पास आकर उसको सहलाने लगी। जी भर कर फूट-फूट कर रो लेने के बाद कैकसी ने सिर उठाया। वस्त्र से अपनी आँखें पोंछी और बोली,

‘मणि मेरा एक कार्य करेगी?'

‘करूँगी।’

‘तो जा, तात से कह दे, मैं अपनी बलि देने के लिए तैयार हूँ।'

मणि की बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वह यह सुनकर भी कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही, फिर स्वयं भी रोने लगी।

‘रो मत, तुझे तो प्रसन्न होना चहिए कि तेरी सखी दैत्यकुल के काम आ रही है!' कहकर कैकसी ने मणि का हाथ पकड़ा फिर कहा,

‘हाँ मणि; यह प्रस्ताव देते समय मैंने तात की आँखें देखी थीं। यह उनकी इच्छा ही नहीं, उसमें दैत्यपति की आज्ञा भी निहित थी। कुल के उद्धार का यह सौभाग्य स्वीकार लेने के अतिरिक्त और कुछ सोचने की अनुमति नहीं मिलने वाली।' कहकर भरे हुए नेत्रों वाली कैकसी सिर झटककर व्यंग्य से हँसी, और मणि के साथ सुमाली के कक्ष के द्वार पर जाकर खड़ी हो गई।

फिर कैकसी ने मणि के दोनों हाथ पकड़े, उसकी ओर देखा, ओठ भींचे और एक गहरी साँस भरी। पलकें गिरायीं आँसू की बूँदें अलकों और पलकों के मध्य फँसीं और फिर लुढ़ककर कपोलों पर आ गयीं। कैकसी ने मणि की हथेलियाँ थामी हुई थीं। उसने उसके हाथों की उँगलियों के पृष्ठ भाग को अपनी आँखों से लगा लिया। मणि की उँगलियाँ कैकसी के आँसुओं से भीग गयीं।

‘आती हूँ जाना मत' कैकसी ने कहा। होठों पर कड़वी मुस्कान और नेत्रों में अश्रु लिये वह सुमाली के कक्ष में चली गयी। सुमाली अन्दर नहीं था, किन्तु कैकसी मानो अपने आपे में थी ही नहीं। वह सुमाली के आसन के पास जाकर बोली,

‘मैं आ गयी हूँ तात।'

और फिर इस प्रकार सिर झुकाकर खड़ी हो गयी जैसे सुमाली वहाँ बैठा हो। तभी सुमाली

कहीं से लौटा। कक्ष के द्वार पर मणि को देखा। उसके एक प्रमुख सरदार की यह बेटी, कैकसी की सबसे अच्छी सहेली है, यह सुमाली जानता था। मणि को अपने कक्ष के द्वार पर देखकर उसे लगा कि अवश्य ही यह कैकसी का कोई सन्देश लेकर आयी होगी। पता नहीं क्या कहलवाया होगा, कैकसी ने। उसने सोचा। उसे इतनी शीघ्र किसी उत्तर की आशा नहीं थी, फिर भी यदि कैकसी ने मनाकर दिया होगा तो...। यह विचार आते ही उसका चेहरा सख्त हो गया। 'न' उसे नहीं सुनना था। 'देखें, यह क्या कहती है, उसने सोचा और मणि की ओर देखकर पूछा,

'कैसे आयी हो मणि, कुछ कहना है क्या?'

'नहीं, मुझे कुछ नहीं कहना, किन्तु कैकसी अन्दर आपके कक्ष में है।' मणि ने कहा।

'अच्छा' कहकर सुमाली कक्ष के अन्दर चला गया। कैकसी अभी भी उसके आसन के सम्मुख उसी प्रकार सिर झुकाकर ऐसे खड़ी हुयी थी जैसे वह कोई पत्थर की प्रतिमा हो। सुमाली ने कैकसी को देखा और अपने आसन पर बैठ गया। अब उसने कैकसी के मुख की ओर देखा।

कैकसी का चेहरा एकदम भावहीन था। सुमाली ने कैकसी के चेहरे पर लिखे शब्दों को पढ़ा और पुत्री के लिये पिता के हृदय में उठने वाली पीड़ा ने उसे हिला दिया, पर शीघ्र ही उसके अन्दर का शासक जाग उठा। उसने अपने को मजबूत किया और बोला,

'कुछ कहना है, कैकसी?'

'हाँ।' कैकसी ने कहा।

प्रश्न भरी दृष्टि से सुमाली ने कैकसी की ओर देखा, पूछा कुछ भी नहीं।

'आज्ञा शिरोधार्य है तात।' कैकसी ने कहा। उसके इस स्वर ने पूरे कक्ष की हवा में जैसे पीड़ा घोल दी। कैकसी यह कहने के बाद लगभग भागती हुई बाहर आयी, मणि से लिपट गई और दोनों सिसक कर रो पड़ीं।

दर्द में लिपटा हुआ मन
इस तरह रोया
कि आँसू खून के उमड़े
किन्तु पानी से दिखे
और बह गये।

इसके बाद सुमाली ने कैकसी को विश्रवा मुनि के आश्रम में भिजवा दिया। विश्रवा मुनि उस समय अधेड़ हो चुके थे। रावण, कुम्भकर्ण, और विभीषण इन्हीं कैकसी और विश्रवा के पुत्र थे और सुपर्णखा इनकी पुत्री।

कैकसी को विश्रवा मुनि के आश्रम में कई वर्ष हो चुके थे। कैकसी के विश्रवा मुनि से विवाह के पश्चात कैकसी के बच्चों को अपने अनुरूप ढालने के उद्देश्य से भी सुमाली अपने ग्यारह पुत्रों के साथ विश्रवा के आश्रम में ही आकर रहने लगा था।

कुम्भकर्ण, रावण, विभीषण और सुपर्णखा सभी किशोरावस्था में आ चुके थे और अपने मामाओं के साथ खेलते-कूदते बड़े हो रहे थे। सुपर्णखा का असली नाम वज्रमणि था, किन्तु उसके नाखून प्राकृतिक रूप से लम्बे, सुन्दर और सुडौल थे, अतः उसे प्यार से सुपर्णखा भी कहने लगे थे।

कैकसी के पुत्रों में कुम्भकर्ण बहुत आलसी और बहुत अधिक खाना खाने वाला था। सच तो यह है कि उसे मात्र खाना और सोना ही प्रिय था और वह बहुत बेसुध और बहुत देर-देर तक सोता था।

इसके विपरीत, रावण बहुत तेज, फुर्तीला और तीक्ष्ण बुद्धि का तो था ही, अपने पिता से योग सीखकर उसमें भी बहुत कुशल हो गया था और उसने अपने शरीर को बहुत ही सुगठित बना रखा था।

कुम्भकर्ण, रावण और सुपर्णखा अपने नाना दैत्यपति सुमाली के बहुत अधिक प्रभाव में थे, किन्तु विभीषण फिर भी अपने पिता विश्रवा पर गया था और सात्त्विक प्रवृत्ति का था।

सुपर्णखा सबसे छोटी और सबकी दुलारी होने के कारण नटखट और चंचल तो थी ही, बहुत हठीली भी हो गयी थी।

इस बीच कैकसी की सहेली मणि का भी विवाह हो चुका था। वह अक्सर अपने मायके आती थी, किन्तु कैकसी के पिता और भाई भी मुनि विश्रवा के आश्रम में ही रहने लगे थे, अतः कैकसी अधिकतर वहीं रहती थी इस कारण मणि और कैकसी का मिलना नहीं हो पाता था, किन्तु एक बार जब मणि अपने मायके आयी तो प्रयास करके, मात्र कैकसी से मिलने, विश्रवा मुनि के आश्रम भी आयी। दोनों सहेलियाँ वर्षों बाद मिली थीं। कैकसी, मणि के आने की बात सुनकर लगभग दौड़ती हुई उससे मिलने आयी और मिलते ही दोनों लिपट गयीं।

'मणि, कैसी हैं? कैकसी ने पूछा

'अच्छी हूँ। बहुत अच्छी हूँ, तू कैसी है?'

'ठीक हूँ, सुखी हूँ।'

मणि को कैकसी की व्यथा पता थी, अतः उसने फिर पूछा,

'सचमुच सुखी है न?'

'देख तो रही है, चार-चार बच्चों की माँ बन चुकी हूँ और फिर मेरा मान बढ़ाने के लिए तो मेरे पिता और सभी ग्यारह भाई प्रहस्त, अकम्पन, विकट आदि भी यहीं आकर रहने लगे हैं। अब इतने सुख के बाद मुझे और कितने सुख की आकांक्षा होगी?'

कैकसी की बात में व्यंग्य भी था और पीड़ा भी। मणि ने सहेली का मन समझा, पूछा-

'तुम्हारे पिता और भाई के यहाँ आकर रहने के पीछे कोई तो कारण होगा, कैकसी।'

'हाँ, एक तो यही कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुझे यहाँ भेजा गया था, उसकी पूर्ति में कोई शंका न रहे। बच्चों के मन में शुरू से ही वह बात बिठानी थी ना।'

'और इसके अतिरिक्त?'

'इसके अतिरिक्त यह कि जब तक बच्चे बड़े होकर कुबेर से लड़कर लंका वापस लेने योग्य न हो जाएं तब तक लंका के पास ही रहकर वहाँ की परिस्थितियों से परिचित रहना भी है और देवताओं से उलझने से बचना भी है; अब इसके लिये कुबेर के पिता के आश्रम से अधिक उपयुक्त स्थान और कौन सा हो सकता था।'

'हूँ,' मणि ने कहा, फिर जोड़ा

'और ऋषि विश्रवा?'

'ठीक हैं।' बहुत ही निरपेक्ष भाव से कैकसी ने कहा।

कुछ औपचारिकताओं के बाद सहेलियाँ जब मिलकर और सिर जोड़कर बैठीं तो मणि ने

पूछा,

‘कैसे हुआ सब कुछ?'

‘क्या?'

‘तेरे पिता के आदमी तुझे वहाँ से लाकर यहाँ छोड़ गये थे, इतना तो मैं जानती हूँ, किन्तु उसके बाद तूने कैसे झेला सब कुछ?'

‘इतने वर्षों बाद उन बातों को याद करने से कुछ फायदा है क्या मणि? मैं उन बातों को भुला चुकी हूँ।'

‘क्या सचमुच तुम उन बातों को भुला सकी हो कैकसी?'

कैकसी पीड़ा भरी हँसी हँसी।

‘उन्हें भुलाना कठिन है, किन्तु भुलाने का प्रयास तो करती ही हूँ।

‘तो रहने दे मत बता।'

कुछ देर के लिए एक असहज मौन रहा, फिर कैकसी ने कहा,

‘मणि, लोग कहते हैं, किसी अपने से कहने से दुख बँट जाते हैं।'

‘ऐसा कहते तो हैं।'

‘तो सुन!' कैकसी ने कहा। ‘मणि, वहाँ से पिता के कुछ विश्वास-पात्र लोग मुझे लाये और चुपचाप यहाँ छोड़कर चले गये। मैं बहुत देर तक जहाँ वे छोड़ गये थे उसी जगह बैठी रोती रही, तभी अचानक विश्रवा स्वयं वहाँ आ गये।

मुझे रोते हुए देखकर उन्होंने मुझसे मेरा परिचय और रोने का कारण पूछा। मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था और पिता के द्वारा उनकी चर्चा किये जाने से पूर्व उनके बारे में कुछ सुना भी नहीं था, किन्तु उनके बात करने के तरीके से मैं समझ गयी कि वे विश्रवा ही होंगे।'

‘मैं, दैत्यपति सुमाली की पुत्री कैकसी हूँ।' मैंने कहा।

‘तुम यहाँ कैसे पहुँची?'

‘मेरे पिता के लोग मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।'

‘यहाँ मेरे आश्रम में, लेकिन क्यों?'

‘मैं क्या बताती मणि? कैसे बताती कि मुझे वहाँ पर क्यों छोड़ा गया है।'

मणि को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा, वह केवल अपने सीने पर हाथ रखकर ‘ओह' कहकर रह गयी।

‘फिर क्या किया तुमने?' उसने पूछा।

‘कुछ नहीं, रोती रही बस।'

‘फिर।'

‘विश्रवा मुझे देखकर सांत्वना देने का प्रयास करने लगे। कहने लगे, रोओ मत, मैं तुम्हारे पिता तक तुम्हें सुरक्षित पहुँचवा दूँगा।'

‘फिर।'

‘मैं वहाँ वापस नहीं जा सकती; आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।' मैंने कहा।

‘शरण से क्या अर्थ है तुम्हारा?' विश्रवा ने पूछा।

‘स्त्री के लिये पुरुष की शरण का क्या अर्थ होता है?'

‘कोई भी व्यक्ति तुम्हारी इस बात का जो अर्थ लगायेगा वह मुझे अपेक्षित नहीं लगता,

या शायद मैं तुम्हारी बात का तात्पर्य समझ नहीं पा रहा हूँ, किन्तु हाँ, तुम जब तक चाहो यहाँ रह सकती हो।

'मणि, मैं वहाँ रहने लगी, किन्तु एक अकेली कुँआरी लड़की किसी आश्रम में क्यों रहती है, इस बात को लेकर लोगों ने कानाफूसी शुरू कर दी। अतः पिता की इच्छानुसार मैंने उनसे विवाह का निवेदन करने का मन बना लिया और एक दिन मौका देखकर उनसे कहा-

'ऋषिवर, सत्य यह है कि मेरे पिता की इच्छा थी कि मैं आपसे विवाह कर कोई गुणी पुत्र प्राप्त करूँ, उन्होंने मुझे इसीलिये आपके आश्रम में पहुँचवाया था।'

'मणि, मुझे लगता था वे ऋषि हैं, मुनि हैं, सात्विक विचारों वाले ज्ञानी और समझदार हैं, वे कहेंगे, तुम तो मेरी बेटी की आयु की हो, मैं तुमसे विवाह कैसे कर सकता हूँ? मैं तुम्हारे पिता से बात करके उन्हें तुम्हारे अनुरूप ही वर खोजने के लिये समझाऊँगा, किन्तु मैं आश्चर्य से भर उठी, जब उन्होंने सहज ही इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी।

इतने दिनों तक उनके आश्रम में रहने और उनकी दिनचर्या देखने के बाद मेरे मन में उनके लिये कुछ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी, किन्तु जब वे अपनी कन्या जैसी उम्र की लड़की से विवाह करने को सहज ही राजी हो गये, तो वह समाप्त हो गयी, यद्यपि मैं वहाँ इसीलिये भेजी गयी थी फिर भी।'

'इस 'हाँ' से बहुत कष्ट हुआ होगा कैकसी!'

'कष्ट तो हुआ ही साथ ही मेरे मन में आशा की एक किरण बची हुई थी कि शायद विश्रवा मुझे इस अन्याय से बचा लेंगे, वह भी मर गयी।'

'और उनसे विवाह के बाद?'

'विवाह का पता लगते ही, मेरे पिता अपने ग्यारह बच्चों के साथ यहीं आकर रहने लगे।'

'मैं सोचती हूँ मणि, कोई-कोई अपने स्वार्थ के लिये कितना नीचे जा सकता है, यह समझना कठिन है।'

मणि क्या कहती।

कुछ देर तक एक असहज मौन रहा, फिर कैकसी ने कहा,

'हर लड़की का विवाह होता है, मेरा भी हुआ, बच्चे हुए। सबकुछ वही, फिर भी कितना अलग।'

'हमारे जीवन में ऐसी घटनाएं होती हैं कैकसी। बाहर से सबके जैसी, भीतर से बिल्कुल अलग।'

'हाँ, और परिस्थितियाँ हमें सब कुछ सहना भी सिखा देती हैं।'

'अर्थात तेरे जीवन में सहना अधिक और प्रेम कम है, यही कहना चाहती है क्या तू?'

'हाँ, यही कहना चाहती हूँ। यद्यपि मेरे जीवन में प्रेम भी है। मुझे अपने बच्चों से प्रेम है, किन्तु विडम्बना ही तो है कि मेरे बच्चे किसी प्रेम की नहीं, मजबूरी की उत्पत्ति हैं,' कहकर कैकसी ने अपने सीने में गहरी-सी साँस भरी, जैसे वह बहुत थक गयी हो।

'तुम्हारे मन में कितनी पीड़ा भरी हुई है, कैकसी।' कहकर मणि ने कैकसी की आँखों में छलकते आँसू अपने आँचल से पोंछ दिये।

'तुम ठीक कहती हो मणि; मेरे मन में सचमुच बहुत पीड़ा भरी है, किन्तु साथ में कहीं विद्रोह भी है, यद्यपि वह कभी मुखर नहीं हो पाया। पीड़ा की तरह विद्रोह भी भीतर ही भीतर

घुटकर रह गया।'

कैकसी, मणि की गोद में अपना सिर रख सिसक उठी। मणि ने उसके सिर पर अपना हाथ रख दिया। कुछ देर बाद कैकसी ने अपना सिर उठाया तो कपोलों पर आँसुओं की लकीरें थीं। मणि ने अपनी उँगलियों से कैकसी का चेहरा साफ किया। कुछ पलों बाद...

'मणि, शायद यही कारण है कि विभीषण को छोड़कर मेरे अन्य बच्चों के स्वभाव मेरी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हो सके। कुम्भकर्ण बहुत आलसी है; सूपर्णखा बहुत हठी और रावण बहुत वीर, साहसी और बुद्धिमान है, वह अपने पिता से वेदों का अध्ययन भी कर रहा है, किन्तु साथ ही दुर्बुद्धि भी लगता है। मुझे उसके भी भविष्य को लेकर चिन्ता रहती है, क्योंकि दुर्बुद्धि से गुण भी अवगुण जैसे परिणाम देते हैं।'

रावण ने भविष्य में वेदों की ऋचाओं पर टिप्पणियाँ भी कीं और वेदों का सम्पादन व उनके मन्त्रों की व्याख्या भी। रावण का यह कार्य 'कृष्ण यजुर्वेद' नाम से जाना गया। रावण की लंका में वेदपाठ बहुत लोकप्रिय और प्रशंसित था।

'तूने कहा कि तेरे बच्चे प्रेम की नहीं मजबूरी की उत्पत्ति हैं; क्या सचमुच विश्रवा से तू कभी भी प्रेम नहीं कर पायी?'

'जिस प्रेम की बात तू कर रही है मणि, वह करुणा, सहानुभूति और यौन-आकर्षण का सम्मिश्रण होता है। विश्रवा के पास मेरी करुणा और सहानुभूति के लिये कुछ भी नहीं था और उनके प्रति मेरे मन में किसी भी तरह का कोई आकर्षण तो कभी पैदा ही नहीं हुआ।'

'तेरे मन में उनके प्रति कुछ भावनाएं तो रही होंगी?'

'भावनाओं के लिये कारण और प्रभाव का होना आवश्यक होता है। तो, कारण तो उनसे पुत्र प्राप्ति था ही, और प्रभाव था मेरे जीवन का रसहीन होना, अतः वे कैसी भावनायें थीं, यह मैं कह नहीं पाऊँगी पर तू समझ तो सकती है न।'

'कहीं ऐसा तो नहीं, तुझे ठीक से पता न हो, पर मन के किसी कोने में उनके प्रति घृणा छिपी हो।'

'नहीं, घृणा के लिये किसी के प्रति क्रोध, उससे डर और उसके प्रति अरुचि होना आवश्यक है। मेरे मन में उनके प्रति अरुचि तो थी और है, किन्तु क्रोध या डर न था, न है।

'बहुत ज्ञानी हो गयी है तू कैकसी।'

'नहीं ज्ञानी मत कह, किन्तु हाँ, जीवन ने बहुत कुछ सिखाया तो है ही।

'एक प्रश्न और है कैकसी।'

'क्या?'

'हमारी इतनी देर की बातचीत में तूने अपने पति को बराबर, मात्र उनके नाम 'विश्रवा' से सम्बोधित किया। उनके लिए 'पति' 'मुनि' या 'ऋषि' जैसा कोई भी शब्द प्रयोग नहीं किया, क्यों?'

मैंने उनके साथ विवाह की रस्म पूरी अवश्य की है, किन्तु मेरे लिए वह रस्म सदैव पिता के आदेशानुसार पुत्र-प्राप्ति और फिर उसे समाज में सम्मान भी मिल सके, इसके लिए हुई एक प्रक्रिया मात्र रही। विवाह तो दो आत्माओं का मिलन होता है, मणि। वे मेरे लिये मात्र एक पुरुष हैं और मैं उनके लिये एक स्त्री, बस।'

'ओह!' मणि ने कहा।

‘किन्तु मणि, किसी भी चीज का यदि अँधेरा पक्ष है तो उजला पक्ष भी होगा। इस सारे घटनाक्रम का उजला पक्ष यह है कि मेरे मन में जीवन के प्रति जिज्ञासायें भी बढ़ीं और आत्म-चिन्तन की प्रवृत्ति भी।'

‘तू दार्शनिक हो रही है कैकसी।'

‘मेरे लिये इतने बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग मत कर मणि, किन्तु सोच कर देख कि भावना-शून्य जीवन कितना फीका और अनाकर्षक होता होगा।’

‘मैं बहुत दिनों तक इस भावना-शून्यता की स्थिति से गुजरी हूँ। प्रेम मैं कर नहीं पा रही थी और घृणा करने का कोई कारण नहीं था, किन्तु ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि उसने मुझे इस चिन्तन की ओर मोड़ा और जीवन रंगहीन होने से बच गया।'

‘यह कौन सा रंग हुआ, कैकसी।'

‘क्यों नहीं हुआ। मेरे पास परिवार की चिन्ता करने के लिये कुछ भी नहीं बचा है। विश्रवा अपनी चिन्ता करने में पूर्ण सक्षम हैं और बच्चों को उनके नाना और ग्यारह मामा दिशा देने में लगे हैं। अब इस सबसे इतर पृथ्वी और आकाश में बहुत कुछ है, देखने के लिए और समझने के लिये भी; यह अच्छा लगने लगा है।'

‘ठीक है।' मणि ने कहा।

बड़े होने पर रावण, कुम्भकर्ण, सुपर्णखा और विभीषण, विश्रवा के आश्रम को छोड़कर सुमाली के साथ चले गये। यद्यपि उनके पिता विश्रवा, रावण को सुमाली के साथ नहीं भेजना चाहते थे। उन्होंने रावण को ऋषि परम्परा के अनुकूल ही शिक्षा और संस्कार दिये थे। वे सुमाली की कुटिल योजना भी जानते थे और रावण की सामर्थ्य का भी उन्हें अनुमान था। उन्हें लोक-चिन्ता भी थी और रावण के भविष्य की भी, किन्तु सुमाली के सम्मुख विवश हो गये।

सुमाली के साथ जाकर रावण पूरी तरह से उसके रंग में रंग गया। उसने अपने नाना सुमाली का दिया लक्ष्य पूरा किया। उसने कुबेर को भगाकर लंका पर विजय प्राप्त की और स्वयं लंका का अधिपति बना।

3. भावनाओं के मध्य

राम के विचारों का प्रवाह टूटा। वे उठे और कक्ष के बाहर बने छज्जे पर खड़े होकर आसमान की ओर देखने लगे। शाम हो रही थी। कुछ काले बादल तैरते हुए आ-आकर जमा हो रहे थे। लगता था वे शीघ्र ही आसमान को ढक लेना चाहते हैं। उन्हें अच्छा लगा। मन थोड़ा शान्त हुआ और फिर सीता की ओर चला गया।

'सीते, तुम इस आकाश में ही कहीं छिपी हो क्या?' उन्होंने मन ही मन कहा, फिर अपनी इस बात पर वे स्वयं ही हँस पड़े।

'जीवन कितना अधूरा सा हो गया है' सोचते हुए उन्होंने आँखें बन्द करते हुए, पलकें कुछ भींचीं, होंठ थोड़े तिरछे किये, फिर बायें हाथ की हथेली कुछ ऊपर उठाकर आसमान की ओर कर ली और एक बार फिर एक पीड़ा-भरी हँसी, और फिर आँखें खोल दीं।

बादल लगभग पूरा आसमान ढक चुके थे। रोशनी बहुत कम रह गयी थी। शाम ढलने को थी। पेड़ छायाओं से लग रहे थे।

हवा तेज और ठण्ढी थी। अचानक बहुत तेज बारिश शुरू हो गयी। वे हवा के साथ आती बौछारों से भीगने लगे, और तभी एक अकेला पक्षी शोर मचाता, उड़ता हुआ निकल गया। वे फिर हँस पड़े। बारिश, ओलों और तीखी हवाओं के बीच वे भी अकेले ही तो थे। पक्षी आया और निकल गया था। अब उसकी आवाजें नहीं थीं। राम को लगा, सीता, ऐसी ही तेज और प्रतिकूल हवाओं का सामना करते हुए जा चुकी थीं और अब उन्हें वैसी ही तीखी हवाओं का सामना करना था। सीता, अचानक उन्हें कितना अकेला और आहत छोड़ गयी थीं। उन्होंने जीवन में बहुत से आघात सहे थे, किन्तु सीता के इस तरह जाने का आघात उन्हें असहनीय लग रहा था।

जब कभी अयोध्या की यह कथा लिखी जाएगी, सीता उसका एक निःशब्द स्तम्भ होंगी। उन्होंने कभी कहीं, कोई प्रश्न नहीं किया।

'सीते, तुम खामोशी हो क्या?' राम ने मन ही मन कहा।

उन्हें याद आया कि उनका और सीता का परिचय पति-पत्नी के रूप में ही हुआ था, किन्तु शीघ्र ही उन्हें लगने लगा था कि उनके बीच शरीरों का नहीं, आत्माओं का बन्धन है। यह प्रेम और विश्वास की पराकाष्ठा थी।

'सीते, तुम केवल प्रेम और विश्वास हो बस। अश्वमेध यज्ञ के समय जो कुछ हुआ, वह तुम्हारे लिये कितना पीड़ा दायक रहा होगा।'

यह तुम्हारे सतीत्व पर लगने वाला दूसरा प्रश्न-चिन्ह था, और तुम, जिसने जीवन भर पता नहीं कितनी पीड़ाएं सही थीं, इस पीड़ा को नहीं सह सकीं; चली गयीं।'

तभी बहुत जोर से बिजली चमकी। राम ने आसमान की ओर देखा। बादल कम हो गये थे और आसमान का नीलापन दिखने लगा था। 'सीते, कहाँ हो तुम।' कहते हुए राम ने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर बाद जब आँखें खोलीं तो ऐसा लगा जैसे पेड़ों की छायाओं के मध्य से

दिखाई देते आसमान में खड़ी सीता उन्हें देख रही हैं। वे चौंक गये। अपनी आँखें मलीं और फिर देखा सचमुच सीता ही थीं। चमकता हुआ मुख और सादे पीले वस्त्र। जैसे वस्त्रों में वे वाल्मीकि के आश्रम से अश्वमेध-यज्ञ में आयी थीं।

'सीते तुम!' वे व्यग्रता से बोले।

'हाँ, मैं।' कह कर वे मुस्करायीं।

'कहाँ हो तुम?'

'वहाँ।' सीता ने उँगली उठाकर उन्हीं की ओर इशारा किया। राम कुछ समझ नहीं सके। उन्होंनें अपने आस-पास देखा और फिर पूछा,

'कहाँ?'

'वहाँ।' सीता ने फिर उन्हीं की ओर इशारा किया।

'मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, सीते, कहाँ हो तुम?'

'रघुकुलनन्दन, अपने सीने पर हाथ रख कर क्यों नहीं देखते?'

'ओह,' वे हँसे और उन्होंने देखा, सीता भी हँस पड़ी हैं। राम कुछ देर तक उस हँसी में खोये से खड़े रहे, फिर बोले,

'सीते, यूँ ही हँसती रहना, जाना मत।'

'मैं कहाँ जाना चाहती हूँ।' सीता ने कहा।

तभी एक बादलों का टुकड़ा आया। जहाँ सीता दिखाई दे रही थीं, वहाँ जाकर उन्हें पूरी तरह ढक लिया और फिर उड़ता हुआ आगे निकल गया। उसके जाने के बाद राम ने देखा, सीता वहाँ नहीं थीं, केवल आसमान था।

राम बहुत देर से खड़े थे। वे वहीं बैठने के लिये कोई स्थान देखने लगे। छज्जे के किनारे ही उन्हें बैठने के लिये कुछ दिख गया। वे उसी पर बैठ गये। पानी कभी तेज और कभी धीमा होते हुए अभी भी बरस रहा था और हवा की तेजी के कारण बूँदें बराबर ही उन्हें भिगो रही थीं।

उन्होंने बाल-सुलभ मन से एक हाथ की हथेली आसमान की ओर कर दी और उस पर पड़ती पानी की बूँदों का स्पर्श महसूस करने लगे। यह सुखद लग रहा था।

सीता की हँसी राम के मन से जा नहीं रही थी। यह हँसी उनके मन को सदा ही गुदगुदा जाती थी। आज भी कुछ पलों के लिए ऐसा ही हुआ था, पर सीता के जाते ही मन उदास हो गया। सीता को उन्होंने जब पहली बार देखा था, तब भी वे हँस रही थीं। वह दृश्य उन्हें आज तक भूला नहीं था।

उन्हें याद आया, जब जनकपुरी में लक्ष्मण के साथ वे भूल से उस वाटिका में प्रवेश कर गये थे जिसमें सीता रोज आती थीं। उस शाम भी वे अपनी सखियों के साथ आई हुयी थीं और किसी परिहास में निमग्न थीं। हँसी के कारण उनके अधखुले से नेत्र, मुख पर उल्लास की चमक, कुछ लाल और फूल की पंखुड़ियों जैसे अधर और चमकती हुई दाँतों की पंक्ति...। सब कुछ राम की आँखों में जीवन्त हो उठा।

सीता पर दृष्टि पड़ते ही वे चौंक पड़े थे और फिर ठगे से खड़े रह गये थे।

उस हँसते हुए सौन्दर्य से उनके नेत्र तब हटे, जब अचानक सीता की दृष्टि भी उन पर पड़ गयी। राम बहुत सकुचा गये थे। वे वहाँ से लौटे अवश्य, किन्तु मन, सीता की हँसी से बँधा वहीं रह गया।

बरसात धीमी हो चुकी थी, पर हो रही थी। अचानक फिर बिजली चमकी और बहुत सा प्रकाश बिखर गया। सीता की हँसी ऐसे ही प्रकाश बिखेर दिया करती थी। राम की पीड़ा गहरा गयी। सीता अपने साथ वह प्रकाश समेट ले गयी थीं।

कुछ देर पहले आसमान में जिस स्थान पर सीता दिखी थीं, राम की दृष्टि उन्हें खोजते हुए फिर उसी स्थान पर जा कर टिक गयी। वहाँ वृक्षों की पंक्ति के पीछे सिर्फ आसमान था और कुछ नहीं, पर न जाने क्यों राम को लगा कि वहाँ कुछ रोशनी सी है। वे उसे देखते हुये कुछ ध्यान की सी अवस्था में हो गये और तभी वही पक्षी एक बार फिर शोर करता, चीखता हुआ सा गुजर गया।

राम उसे देखने का प्रयास करने लगे, पर वह दिखाई नहीं दिया। राम को लगा जैसे उनका मन भी कभी-कभी सीता के लिये ऐसे ही चींखता हुआ सा उड़ता है और फिर शान्त हो जाता है।

बरसात अभी भी उसी गति से हो रही थी। वे उठे और धीरे-धीरे चलते हुए खुले आसमान के नीचे खड़े होकर भीगने लगे। मन, कक्ष में जाने का नहीं कर रहा था।

राम को ध्यान आया, सीता किस प्रकार अपने सतीत्व पर उठे प्रश्न से आहत होकर, उनसे अपने नेत्रों से कुछ कहती हुई सी, तीव्रता से यज्ञ-स्थल से किसी अज्ञात स्थान के लिये चली गयी थीं।

क्या था उन आँखों में? क्या-क्या कह डाला होगा सीता ने? राम को याद आया उन आँखों में प्रेम, उलाहने, विदा का संकेत और बहुत सा शून्य था।

हमेशा हँसने वाली आँखों में इतना बड़ा शून्य। वे उस समय कितना विचलित हो उठे थे और वह सब कुछ याद कर आज फिर से वैसा ही लग रहा था।

'तुम मेरे पास नहीं आ सकतीं तो क्या; मैं तो तुम्हारे पास आ ही सकता हूँ।' उन्होंने मन ही मन कहा।

फिर तुम्हारा घना साया
खो गया है,
और मैं,
तपती हुई,
इस धूप में
फिर से अकेला ही खड़ा हूँ।

* * *

राम को यहाँ खड़े हुए बहुत देर हो चुकी थी। लक्ष्मण, राम को महल के लगभग सभी कक्षों में ढूँढ़ने के बाद महल की छत पर आये। अँधेरे में, खुले आसमान के नीचे, बरसात में भीगते राम को देख कर वे अचम्भित रह गये। सीता के जाने के बाद से, राम के व्यवहार में कभी-कभी जो विरक्ति झलक जाती थी, वह उन्हें चिन्तित तो करती थी, पर यह स्वाभाविक है और समय के साथ मन के घाव भर ही जायेंगे, यह विचार उन्हें आश्वस्त करता था, किन्तु आज राम को इस तरह देखकर वे इतने विचलित हो गये कि कुछ भी कहना भूलकर उन्हें देखते हुये स्तब्ध खड़े रह गये।

बार-बार गरजते बादल और चमकती बिजली से राम की मुद्रा में कोई अन्तर नहीं पड़ रहा था। लक्ष्मण कुछ देर तक यूँ ही उन्हें देखते रहे, फिर पास जाकर उन्हें छू कर बोले-

'भइया।'

इस अचानक स्पर्श से राम चौंक गये। लक्ष्मण को देखा और फिर बोले-

'ओह लक्ष्मण।'

'भइया, आप बहुत भीग गये हैं, आइए नीचे चलें।'

लक्ष्मण के मन में बहुत कुछ चल रहा था, किन्तु वह सब कहने के लिये उन्हें यह अवसर उचित नहीं लगा। दोनों नीचे आये। लक्ष्मण ने एक परिचारिका से मँगवाकर उन्हें वस्त्र दिये। राम, बदन सुखाकर और वस्त्र बदल कर आये। स्वयं लक्ष्मण भी भीग गये थे। वे भी वस्त्र बदल कर आये। तब तक एक स्थान पर आग जला दी गयी थी। राम और लक्ष्मण दोनों वहीं बैठ गये।

रात्रि की निस्तब्धता गहरी थी। कोई कुछ बोल नहीं रहा था पर किसी का भी मन उसके पास नहीं था। कुछ देर बाद लक्ष्मण ने कहा-

'भइया, आपको क्या हो गया है, यूँ रात में अकेले खड़े होकर बरसात में भीगना...।'

राम ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, बस एक फीकी सी हँसी उनके होठों पर आकर रह गयी। लक्ष्मण कुछ देर तक उन्हें देखते रहे फिर बोले-

'भइया, भाभी अब नहीं हंै।'

'जानता हूँ लक्ष्मण।'

'यदि वे होतीं तो क्या आपको इस तरह करने देतीं?'

राम ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद लक्ष्मण ने फिर कहा,

'पर भइया, भाभी हैं।'

इस पर राम हँस पड़े, बोले-

'हाँ, लक्ष्मण वे हैं।'

बैठे हुए कुछ देर हो गयी थी।

'भइया, भाभी के इस तरह जाने की मन में बहुत अधिक पीड़ा है न!' लक्ष्मण ने राम की ओर देखते हुये कहा।

राम ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया, बस अपने नेत्र घुमाकर दूसरी ओर कर लिये। लक्ष्मण ने यह देखा, राम के मन को महसूस किया, आगे बढ़कर राम का हाथ पकड़ कर अपनी हथेलियों में लिया और बोले -

'यह अकेले आपके मन की पीड़ा नहंी है, भइया।'

अब राम ने लक्ष्मण की ओर देखा, और फिर बोले -

'मैं जानता हूँ लक्ष्मण' कहते हुये पलकें गिरा लीं आँसू की एक बूँद उनकी पलकों के बीच फँस गयी। लक्ष्मण यह देखकर अन्दर तक हिल गये और राम के और निकट आ गये।

'भइया क्षमा करियेगा; मैंने अनचाहे ही आपका मन दुखा दिया;' उन्होंने कहा।

'नहीं लक्ष्मण, ऐसा कुछ भी नहीं है।' कहते हुए राम ने मुस्कराने का निष्फल प्रयास किया।

'शब्द जिसके पुरुषार्थ का वर्णन करने में असमर्थ हों, उसके नेत्रों में आँसू, मेरा भ्रम तो

नहीं है। '

'सुख या दुःख किसे नहीं व्यापते लक्ष्मण, और आँसू पी लेने की अपेक्षा कभी-कभी आँसू गिरा लेना शायद व्यक्ति के लिये अच्छा होता है, किन्तु किसी-किसी को तो आँख में आँसू लाने की भी अनुमति नहीं होती। यह कितना त्रासद है।'

'भइया, कोई-कोई व्यक्तित्व ही इतना विराट होता है कि सब को उसकी आँखों से बस मार्गदर्शन की ही अपेक्षा होती है, आँसुओं की नहीं।'

'तुम इसे कैसे भी कह सकते हो।' कहकर राम ने हँसने का प्रयास किया फिर, बोले-

'रात बहुत हो चुकी है, जाओ सो जाओ जाकर,' यह कहकर राम उठे और अपने शयनकक्ष की ओर चल दिये। लक्ष्मण भी उठ पड़े।

लक्ष्मण अपने शयन कक्ष में पहुँचे तो उर्मिला उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

'मौसम कितना खराब हो रहा है।' उर्मिला ने कहा।

'हाँ।'

'आपने बहुत देर कर दी।'

'भइया बहुत दुखी थे।'

लक्ष्मण ने उन्हें राम के बारे में बताया।

'उनका दुख स्वाभाविक है, किन्तु इस प्रकार पानी में खड़े रहना.....' उर्मिला ने कहा।

* * *

राम अपने शयन-कक्ष में पहुँचे, और कुछ देर तक सीता की स्मृतियों में खोये से बैठे रहे, फिर धीरे से बिस्तर पर लेट गये। थके हुए मन और शरीर को नींद ने धीरे से आकर अपने आगोश में ले लिया और कुछ देर में ही फिर एक स्वप्न उनकी आँखों में तैरने लगा।

एक बड़े से राज्य में रहने वाला और बहुत वीर राजकुमार, जिसने अपने गुरुजनों से सुना था कि दूर घने जंगल और ऊँचे पहाड़ों के उस पार कहीं परियों की राजकुमारी रहती है। एक दिन उस परी से मिलने के लिये अपने महल से एक शानदार और तेज घोड़े पर बैठ कर निकल पड़ा।

राजकुमार जंगल से जा रहा था, तभी उसको किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। राजकुमार रुककर चारों ओर देखने लगा। कराहने की आवाज फिर आयी तो वह उसी दिशा में बढ़ा। पास पहुँचकर उसने देखा, एक स्त्री तिरछी लेटी हुई कराह रही थी। उसकी पीठ में एक छुरा घुसा हुआ था। पीड़ा के कारण वह हिल भी नहीं पा रही थी।

राजकुमार ने जंगल से ढूँढ़कर कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र कीं और उन्हें पीसकर उसके घाव पर लगाने के बाद बहुत ही सावधानी से उस छुरे को स्त्री की पीठ से निकाला, फिर कहीं से एक पत्ते में पानी भर लाया और उसे पिलाया।

स्त्री की पीड़ा कुछ कम हुई तो राजकुमार उसे घोड़े की पीठ पर लाद कर उसके घर ले गया। कुछ लुटेरों ने उसकी पीठ में छुरा मारा था और उसके पति ने इसमें उसकी ही गलती बताते हुये उसकी परवाह नहीं की थी। राजकुमार का मन पीड़ा से भर उठा।

'तुम इतने क्रूर कैसे हो सकते हो?' राजकुमार ने पति से कहा, फिर पति के भूल स्वीकार कर लेने और भविष्य में पत्नी का ध्यान रखने के आश्वासन के बाद वह आगे बढ़ गया

और जंगल व पहाड़ों को पार करते हुए एक दिन परी तक जा पहुँचा।

दोनों ने एक दूसरे को देखा, बातें कीं, साथ-साथ बैठे और एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। राजकुमार जब वापस होने लगा तो उसने परी से भी अपने साथ चलने को कहा। परी तैयार हो गयी।

'तुम अपने घोड़े पर चलो, मैं उड़ते हुए चलूँगी,' परी ने कहा।

'व्यर्थ ही श्रम करोगी; फिर रास्ते में ऊँचे पहाड़ और जंगल हैं। मैं तुम्हें यूँ ही भटकने के लिये नहीं छोड़ सकता।' राजकुमार ने कहा।

'फिर?'

'मेरा घोड़ा बहुत ताकतवर और तेज हैं; इसी पर बैठ जाओ, हम साथ ही चलेंगे।'

परी घोड़े पर बैठ गयी। जब वे पहाड़ पार कर रहे थे, तभी बहुत जोर की काली आँधी आयी। घोर अँधेरा छा गया। वे एक चट्टान की आड़ में खड़े हो गये। परी ने ऐसी भयानक आँधी कभी नहीं देखी थी। वह बहुत डरी हुई थी। उसका डर तब और भी बढ़ गया जब आँधी थमने के बाद कन्धे पर फरसा रखे और क्रोध से भरा एक व्यक्ति उनके सामने आकर खड़ा हो गया। परी भयभीत-सी राजकुमार की आड़ में हो गयी। वह व्यक्ति अपने रक्तिम नेत्रों से राजकुमार को ऐसे घूरने लगा जैसे अपने क्रोध की अग्नि में राजकुमार को जला ही देगा। परी समझ नहीं पा रही थी कि वह व्यक्ति ऐसा क्यों कर रहा है। उसने राजकुमार की ओर देखा। वह अविचल और निर्भीक खड़ा उस व्यक्ति को देख रहा था और शायद कुछ मुस्करा भी रहा था।

राजकुमार की इस मुस्कराहट ने उस व्यक्ति के क्रोध को मानों पानी-पानी कर दिया। उस व्यक्ति ने ऐसे 'ओह' कहा, जैसे उसे किसी भूल का एहसास हुआ हो। फिर वह मुड़ा, और वापस वृक्षों और पहाड़ों के बीच में कहीं खो गया। कुछ भी अप्रिय नहीं हुआ। राजकुमार परी को लेकर अपने नगर की ओर चल पड़ा।

नगर में रहते हुये उन्हें लम्बा समय बीत गया। अधिकतर लोग उन्हें बहुत अधिक स्नेह और आदर देते थे, किन्तु कुछ लोग उनसे जलने वाले भी थे। और एक दिन जब राजकुमार नहीं था, तब उन लोगों ने पत्थर मार-मार कर परी को बहुत चोटें पहुँचायीं। परी अत्यधिक घायल होकर गिर पड़ी और कराहने लगी। इसके बाद उसे पत्थर मारने वाले लोग राजकुमार के आने की आशंका से भाग गये।

राजकुमार आया। परी को देख कर दुःख और क्रोध से भर उठा। घायल परी अब वहाँ और अधिक रहने को राजी नहीं थी। राजकुमार के रोकने पर भी वह उड़ी और आसमान में खो गयी।

परी के जाने के बाद राजकुमार बहुत उदास हो गया। घोड़े पर बैठा और नगर से बाहर जाकर उसने घोड़ा, मुकुट, कीमती वस्त्र, आभूषण आदि भी छोड़ दिये और नंगे पैर ही जंगल की ओर चल पड़ा। रास्ते में एक नदी आयी। राजकुमार उसे पार करने के लिये उस पर बने पुल पर चढ़ा। वह लगभग बीच रास्ते में ही था कि पुल टूट गया और राजकुमार नदी में गिर पड़ा।

स्वप्न टूट गया और राम चौंक उठे 'क्या यह किसी भविष्य का संकेत हैं? 'उनके मन में आया। पहले अधर तिरछे कर, वे थोड़ा सा मुस्कराये फिर पता नहीं क्या सोचकर हँस पड़े।

4. जन-मानस

सीता के प्रयाण के बाद बहुत समय बीत चुका था। अयोध्या के जिन व्यक्तियों ने सीता पर आरोप लगाने में कुछ भी भूमिका निभायी थी, वे पश्चाताप से भरे हुए थे और समाज में ही नहीं, अपने परिजनों की दृष्टि में भी सम्मान खो चुके थे।

सीता के प्रयाण के सम्बन्ध में दो तरह की कहानियाँ प्रचलित थीं। 'वे धरती की पुत्री थीं और धरती माँ ने ही स्वर्ण-सिंहासन भेजा था, जिस पर बैठकर वे धरती में समा गयीं।' यह कहने वालों की संख्या बहुत अधिक थी, किन्तु वे अदृश्य होकर आकाश में विलुप्त हो गयी हैं, यह कहने वालों की संख्या भी कम नहीं थी।

अयोध्या के साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार हो चुका था और साथ ही राम का प्रभाव भी बहुत दूर-दूर तक फैल चुका था, किन्तु सीता उससे भी अधिक दूर तक चर्चा का विषय ही नहीं लोगों की श्रद्धा का पात्र भी हो चुकी थीं। कितने ही लोगों के घरों में सीता की मूर्तियाँ थीं, जहाँ वे देवी का स्थान ले चुकी थीं और जनमानस में आस्था का केन्द्र थीं।

अयोध्या में ऐसा ही एक घर मानस और चित्रा का था। पति-पत्नी दोनों ही सीता के भक्त थे। उस दिन वे पूजा में बैठे हुये थे। सामने शिव और पार्वती की मूर्तियाँ थीं और उनके बगल में सीता का चित्र। चित्रा के नेत्र बन्द, मुख पर कुछ चमक और अधरों पर हलकी सी मुस्कान थी। कुछ देर बाद चित्रा ने आँखें खोलीं तो मानस ने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

'माँ थीं।' चित्रा ने हँसकर कहा।

'माँ?'

'हाँ, माँ सीता थीं।'

'ओह।'

'मुझे तो अक्सर स्वप्न में भी वे दिखाई देती हैं।

'अच्छा, कैसी दिखती हैं वे।'

'बहुत सुन्दर और तेज से भरी हुई।' चित्रा ने कहा, 'और हाँ, और जब भी आती हैं मुझे बहुत से आशीर्वाद देती हैं।'

'तुम बहुत भाग्यशाली हो चित्रे, तुम पर माँ की कृपा है।'

'हाँ, मैं हूँ भाग्यशाली।'

'अच्छा चित्रे, तुम्हें क्या लगता है, माँ भूमि में समा गई होंगी या आसमान में कहीं विलुप्त हुई होंगी?'

'वे भूमि में समा गई हों या आसमान में कहीं विलुप्त हो गयी हों, इससे क्या अन्तर पड़ता है; मैं यह सब नहीं सोचती।'

'फिर।'

'उन्होंने जीवन भर संघर्ष ही जिये, फिर भी सदा धैर्य बनाये रखा; कर्तव्यों का पालन किया और हर मोड़ पर सिर्फ महानता का परिचय दिया, फिर अचानक कहीं खो गयीं। यदि वे देवी

नहीं थीं तो और क्या थीं?'

'तुम ठीक कहती हो, चित्रे!' मानस ने कहा, 'फिर जिस स्थान से वे विलुप्त हुई थीं, आज भी वहाँ जाने से उनका आभास सा होता है और बहुत अधिक शान्ति भी मिलती है।'

'फिर आज मुझे भी वहाँ ले चलो न।'

'ठीक है, ले चलूँगा; अब उठें,' मानस ने कहा।

'तुम उठो, मैं थोड़ी देर और बैठूँगी।' चित्रा ने कहा। मानस उठ पड़ा।

चित्रा ने एक बार फिर नेत्र बन्द कर लिये। पीठ सीधी की और ईश्वर की प्रार्थना में डूब गयी। फिर कुछ देर बाद...

'माँ, तुम्हारी अनुभूति और तुम्हारा आशीष दोनों ही शब्दातीत हैं,' कहती हुई प्रणाम करके उठी और घरेलू कार्यों में व्यस्त हो गयी।

5. वो आये तो

.

राम अनमना-सा मन लिये महल से बाहर निकले और रथ पर बैठकर सारथी से उस स्थान पर चलने को कहा, जहाँ अन्तिम बार सीता के पैरों के निशान मिले थे। रथ चल पड़ा। वे बहुत ही चुपचाप और कुछ सोचते हुये बैठे रहे। कुछ देर में ही वे उस स्थल तक पहुँच गये।

वहाँ वृक्षों का एक कुंज था। इन्हीं के बीच में एक वृक्ष वह भी था जिसके नीचे तक सीता के पैरों के निशान मिले थे। लोग पवित्र मान कर उसके चारों ओर पूजा के लाल धागे लपेटते और उसके नीचे फूल चढ़ाते थे। कुल मिलाकर वह बहुत सुन्दर, शान्त और आकर्षित करने वाला और पवित्रता की अनुभूति से भरा हुआ स्थान था। राम अक्सर उस स्थान पर आकर कुछ देर बैठा करते थे। आज भी जब वे यहाँ पहुँचे, तो उस स्थान पर बहुत से फूल चढ़े हुए थे। वे वहाँ बैठ कर कुछ देर तक उन फूलों को निहारते रहे, फिर नेत्र बन्द कर लिये।

कुछ देर तक वे ऐसे ही बैठे रहे, फिर मन ही मन उन्होंने जैसे आवाज दी, 'सीते!' और इसके साथ ही उनके अधरों पर हलकी सी मुस्कराहट आयी, लगा जैसे वे सीता के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ देर बाद उन्होंने फिर कहा-

'सीते, आओ।'

कुछ भी नहीं हुआ। सीता नहीं आयीं। कुछ पलों के बाद राम फिर थोड़ा सा मुस्कराये, बोले 'सीते, गुस्सा हो?' और इसके बाद उन्हें लगा जैसे सीता सचमुच उनके सामने आ गयी हैं। राम उन्हें देखने लगे। कुछ देर बाद सीता बोलीं,

'यों ही मौन बैठे, मुझे देखते रहेंगे या कुछ कहेंगे भी।'

'कहूँगा, पता नहीं कितना कुछ है, कहने के लिये।'

'तो कहें।'

'नहीं समझ पा रहा हूँ कि कहाँ से शुरू करूँ।'

'कहीं से भी।'

'सीते, जब पहली बार जनकपुरी की वाटिका में तुम्हें देखा था तब.....'

'तब क्या?' सीता ने कहा।

'तुम्हारी मुझ पर दृष्टि पड़ने के बाद, मैंने दृष्टि हटा ली थी और तुम्हें देखने की प्यास मन में शेष रह गयी थी।'

'अच्छा!' सीता हँसीं।

'हाँ, और आज इतना लम्बा समय तुम्हारे साथ जीने के बाद भी मन वही है।'

'अब भी?'

'हाँ अब भी; और एक बात और ' राम ने कहा।

'क्या?'

'तुम्हें देखा है, तुम्हारे साथ जिया हूँ, पर तुम्हारे मन तक...'

‘मन तक क्या?'

‘लगता है मैं तुम्हारे मन तक नहीं पहुँच पाया। बड़ा मन बहुतों का होता है सीते, पर इतना बड़ा मन।'

‘अच्छा, कितना बड़ा,' वे मुस्करायीं।

‘इतना बड़ा कि उसे देखने के लिये एक आयु छोटी पड़ जाय।'

अब सीता खुलकर हँस पड़ीं। बोलीं -

‘देखने वाले का मन जैसा हो, दूसरों का मन भी उसे वैसा ही लगता है।'

‘जीवन के सारे दुःख या सुख तुमने कितने सहज भाव से स्वीकार किये, कभी कोई शिकायत नहीं की, यह बड़प्पन ही तो है।' राम ने कहा।

‘रघुकुलनन्दन, मुझे लगता है आप भावनाओं के प्रवाह में बह रहे हैं।'

‘यद्यपि यह निरी भावुकता नहीं है, सत्य है, फिर भी सीते, इस राम को कभी भावुक भी तो हो लेने दो।'

‘ऐसा क्यों कह रहे हैं आप। मुझे तो आप हमेशा बहुत भावुक ही लगे।'

‘कहाँ सीते, मैं जीवन भर राजधर्म और कर्तव्यों से ही तो बँधा रहा। अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को कब कोई महत्त्व दे सका?'

‘दुखी हैं क्या?'

‘नहीं, किन्तु कभी-कभी जब तुम सामने होती हो तो भावनाओं में बहने का मन करता है।'

सीता हँसीं, बोलीं-

‘मेरा सौभाग्य,' फिर वे उन्हें कुछ अचरज से देखने लगीं।

उन्होंने जीवन भर अधिकतर गम्भीर, कर्तव्यों और मर्यादाओं से बँधे राम को ही देखा था। आज उनका मुख गम्भीर तो था, पर छोटे बच्चों जैसा सरल भी लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे कोई छोटा सा बच्चा अपने मन की बातें कह रहा हो। थोड़ी देर के लिये मौन पसर गया। बस वृक्षों से गुजरती हवा की ध्वनि ही सुनायी पड़ रही थी। तभी राम ने कहा-

‘सीते!'

‘हाँ'

‘रावण की कैद से वापसी के बाद जब पहली बार तुम्हारे चरित्र पर प्रश्न-चिन्ह लगा था, उस समय यदि अपने हृदय की आवाज सुनकर मैंने थोड़ी सी भी कठोरता का प्रदर्शन किया होता, तो दूसरी बार इस पर चर्चा करने का किसी का साहस ही नहीं होता।'

इस बात पर सीता भी गम्भीर हो गयीं। पल भर में ही बहुत से दृश्य उनकी आँखों के सामने से गुजर गये।

‘सम्भवतः...' सीता ने कहा।

‘सम्भवतः नहीं सीते, निश्चित; मेरे क्रोध का सामना करने का साहस धरती पर किसी में नहीं है।'

‘हाँ'

‘फिर तुम्हें वाल्मीकि आश्रम नहीं जाना पड़ता। लव और कुश को अपना बचपन बिना पिता के नहीं बिताना पड़ता और ...' कहकर राम रुक गये।

‘और?'

‘अश्वमेध-यज्ञ में जो हुआ वह भी नहीं होता और मैं इतना अकेला भी नहीं होता।'

‘आप अकेले नहीं हैं। मैं कहीं भी रहूँ, आपके साथ ही हूँ, और आपको किसी भी पश्चाताप की आवश्यकता नहीं है। यज्ञ-स्थल पर जो कुछ भी हो रहा था, उससे आप कितना अधिक व्यथित थे, यह बहुत स्पष्ट था और जब मैं वह स्थान छोड़ रही थी तब मैंने आपके नेत्रों मे छलकती वेदना देखी थी। वे बहुत ही विचलित करने वाले क्षण थे।'

राम भाव-विह्वल थे, बोले-

‘उस समय तुम्हारे मन में कितनी पीड़ा रही होगी।'

‘नहीं, पीड़ा तो नहीं थी।'

‘पीड़ा नहीं थी? ऐसा कैसे कह सकती हो तुम?' राम ने कहा।

‘क्योंकि मेरे मन में कोई इच्छा या अनिच्छा शेष रह ही नहीं गयी थी,' सीता ने कहा।

इस उत्तर के बाद राम चुप हो गये। सीता ने फिर कहा,

‘कभी-कभी मन कैसा हो जाता है, विरक्त और निर्विकार सा।'

‘हाँ, कभी कभी चोट इतनी तीव्र और गहरी होती है कि कुछ देर के लिये पीड़ा का एहसास शून्य हो जाता है।'

‘चोट? कहाँ! मेरे तो कोई चोट नहीं लगी थी।' सीता ने हँसते हुए, वातावरण की गम्भीरता को कम करने के लिये कहा।

‘मैं शरीर की चोट की बात नहीं कर रहा हूँ, सीते।'

‘इतने परेशान से क्यों हैं?'

‘सीते, क्या कुछ देर मेरे पास बैठोगी?'

‘हाँ, बैठूँगी भी और कुछ कहूँगी भी,' सीता ने कहा।

‘कहतीं क्यों नहीं?'

सीता, राम के पार्श्व में उनकी ओर मुख करके बैठ गयीं।

‘कहूँ?' उन्होंने कहा।

‘हाँ।'

‘दुख या सुख मन की अवस्थायें ही तो हैं, हमें इनसे बाहर नहीं आना चाहिये क्या?'

‘तुम ठीक कहती हो सीते; और मैं देख रहा हूँ कि मैं, आजकल कितना अधिक मन के वश में हो रहा हूँ।'

‘और यह ‘मैं कर्ता हूँ' का भाव? यही तो आप से कहलवा रहा है कि मैंने यह किया और यह नहीं किया।'

‘हाँ।'

‘और यह क्रोध क्यों? एक निर्दोष शान्ति जो हमारे भीतर ही है वह क्यों नहीं?'

‘सीते, मुझे लगता है कि अन्याय पर क्रोध करना तो सात्विक क्रोध है। यदि हम अन्याय पर भी क्रोध नहीं करेंगे तो अन्यायी का मनोबल और बढ़ जायेगा।'

‘आप ठीक कहते हैं। अन्याय पर क्रोध स्वाभाविक भी है और उचित भी, किन्तु आवश्यक भी है क्या?'

‘अन्याय का शमन तो आवश्यक है न! क्रोध इसको दिशा देता है।'

‘क्रोध गलत दिशा दे, इसकी सम्भावना बहुत अधिक होती है, फिर आपने जो कुछ भी किया वह समय के अनुसार सर्वथा उचित था, फिर यह पछतावे का स्वर क्यों?'

राम इन बातों पर कुछ भी नहीं बोले, बस सीता की ओर ऐसे देखा जैसे कोई शिष्य अपने गुरू की ओर देखता है। दृष्टि मिली तो सीता ने फिर कहा -

‘इस मनःस्थिति से निकलिए। हम न तो नष्ट हो सकते हैं, न मृत्यु को ही प्राप्त हो सकते हैं। हम या तो कुछ नहीं हैं या सब कुछ हैं।’

‘हम और ईश्वर दो हैं क्या?' उन्होंने फिर कहा।

राम चुपचाप सुन रहे थे। सीता ने बात समाप्त की फिर, बोलीं -

‘कुछ बोलते क्यों नहीं!'

‘तुम ठीक ही तो कह रही हो,' राम ने कहा, फिर थोड़ा रुककर बोले,

‘मैं ही कुछ देर के लिये भटक गया था।'

‘मेरे जाने के दुख से बाहर आइए, मैं गयी नहीं हूँ।'

राम ने सीता की ओर देखा तो वे बोलीं,

‘सच, मैं तो हर पल आपके साथ ही हूँ।' फिर हँसकर बोलीं -

‘आपने कई बार कहा है कि आप मेरे रुष्ट होने से डरते हैं।'

‘हाँ डरता तो हूँ' कह कर राम मुस्कारायें।

‘तो यदि हँसेंगे नहीं, यूँ ही गम्भीर बैठे रहेंगे तो मैं आपसे रुष्ट हो जाऊँगी।'

‘नहीं, नहीं! ऐसा मत करना,' कहकर राम हँस पड़े।

‘हाँ..., तो अब मैं जाऊँ?' सीता ने कहा।

तभी एक पक्षी पंख फड़फडाता और शोर मचाता ऐसे गुजरा जैसे किसी ने डरा कर उसे उड़ा दिया हो। राम के नेत्र खुल गये। वृक्षों और भूमि पर पड़े कुछ फूलों के सिवा कहीं कुछ नहीं था।

‘ओह!' कहते हुये वे ऐसे उठ खड़े हुए, जैसे नींद से जागे हों, किन्तु मन बहुत शान्त और हल्का था।

स्वप्न में
आया कोई!
जागा हुआ,
हँसता हुआ भी...
और जगने के लिये
कहता हुआ भी।

6. यह पक्ष भी

लव और कुश बड़े हो चुके थे। माँ की चर्चा होने पर उनके चेहरे पर पीड़ा के भाव सहज ही आ जाते थे। सीता के विलुप्त हो जाने का स्थान उनके लिये मन्दिर जैसा हो गया था। वे अक्सर यहाँ आया करते थे। आज जब वे आये तब राम भी वहीं थे।

'आओ!' उन्हें देखकर राम बोले। लव और कुश ने उन्हें प्रणाम किया। वे अपने साथ फूल लाये थे। वे फूल उन्होंने अपनी माँ के लिये उस स्थान पर रखे और भूमि पर मस्तक टिकाकर मन ही मन उन्हें प्रणाम करने के बाद खड़े हो गये।

'महल से आ रहे हो?' राम ने पूछा।

'हाँ,' दोनों ने लगभग एक साथ उत्तर दिया।

'आओ कुछ देर यहीं बैठते हैं!' कहते हुये राम ने लव जो, दोनों में छोटे थे, का हाथ पकड़ा। पास ही एक थोड़ा सा ऊँचा स्थान था। तीनों वहीं बैठ गये।

चारों ओर बहुत अधिक हरियाली थी। शाम हो रही थी। हवा में कुछ ठंढक और हरियाली की गन्ध सी थी। पास ही कुछ गिलहरियाँ पेड़ों पर चढ़ उतर रही थीं। राम उन्हें देखने लगे। तभी एक गिलहरी उछलती हुई आयी, राम के पैरों के पास कुछ ठिठकी और फिर उन्हें छूती, दौड़ती हुई निकल गयी।

'ओह, तुम!' राम ने कहा।

'कौन हैं?' कुश ने कहा। लव और कुश साथ होते थे तो लव अधिकतर शान्त ही रहते थे। शायद बड़े भाई के प्रति सम्मान दिखाने का यह उनका तरीका था।

'कुछ नहीं, गिलहरी थी।'

'किन्तु आपने जिस तरह 'ओह तुम' कहा उससे लगा जैसे आप किसी परिचित को सम्बोधित कर रहे हैं।'

'ये गिलहरियाँ परिचित ही तो हैं,' कहकर राम हँसे। उनके इस उत्तर से लव और कुश कुछ अचम्भित से लगे।

'परिचित? कैसे पिताश्री?' कुश ने कहा।

'वनवास के दौरान हम जहाँ-जहाँ भी रहे, हर स्थान पर गिलहरियाँ थीं। यूँ ही उछलती, कूदती, दौड़ती; और ये तुम्हारी माँ को बहुत लुभाती थीं। वे हमेशा इन्हें खाने के लिये कुछ न कुछ दिया करती थीं। कभी-कभी हम किसी पेड़ के नीचे बैठकर गिलहरियों के ये खेल देखा करते थे।'

लव और कुश हँस पड़े।

'सच?' उन्होंने कहा।

'हाँ सच, और कुश, जब तुम्हारी माँ को रावण की कैद से छुड़ाने के लिये हम समुद्र पर पुल बना रहे थे, तब भी एक गिलहरी मुँह में कंकड़ दबा-दबाकर ऐसे ला रही थी, जैसे उस कार्य में सहयोग कर रही हो।'

'ओह,' कुश ने कहा।

‘कभी-कभी ये गिलहरियाँ मुझे पुराने दिनों की स्मृतियों में लौटा देती हैं।'

सीता के लंका में कैद की बात आने से वातावरण कुछ गम्भीर हो गया था। राम ने इसे महसूस किया और लव व कुश को सम्बोधित कर कहा,

‘तुम लोग अचानक कुछ गम्भीर हो गये हो, कुश।'

‘पिताश्री, आप भी तो...' कुश ने कहा।

‘हाँ, पर मेरा तो स्वभाव ही ऐसा है।’

‘माँ कहा करती थीं, आप प्रारम्भ से ही कुछ गम्भीर तो थे, किन्तु इतने नहीं।'

राम हँस पड़े, बोले-

‘अच्छा, और क्या कहा करती थीं वे?'

‘वे आपके बारे में बहुत कुछ बतलाया करती थीं। विशेष रूप से यह कि आप एक आदर्श चरित्र तो थे ही, उनका बहुत अधिक ध्यान भी रखते थे।'

‘हाँ, वे ऐसा कहती थीं?'

‘हाँ पिताश्री! आपकी चर्चा करते समय जैसे वे कहीं खो सी जाती थीं। आपके स्वभाव और कार्यों के बारे में बहुत सी बातें उन्होंने हमें बतायी थीं।'

‘कुश, उन्हें कुछ शिकायतें भी तो रहीं होंगी।'

‘नहीं, वे आपके प्रति प्रशंसा की भावनाओं से ही भरी हुई थीं।'

‘अच्छा।' राम ने कहा, फिर उनके होठों पर एक हलकी सी मुस्कान आई, बोले,

‘फिर भी, कभी कुछ तो शिकायत की होगी।'

‘नहीं, कभी भी नहीं,' कुश ने कहा। तभी लव जो चुपचाप सुन रहे थे, शरारत से बोले -

‘करती थीं; एक शिकायत थी उन्हें आप से।'

‘थी न...' राम ने कहा, ‘बताओ, तुम बताओ लव, उन्हें मुझसे क्या शिकायत थी?'

‘वे कहा करती थीं, कि आप अपना ध्यान बिल्कुल भी नहीं रखते हैं।'

‘हाँ, यह शिकायत तो बहुत बड़ी है।' कहते हुये राम अनायास ही हँस पड़े।

‘पर मेरा ध्यान रखने के लिये वे स्वयं तो थीं,' उन्होंने जोड़ा।

‘हाँ, यही तो; महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हुए, यही तो उनकी चिन्ता का विषय था। उन्हें बराबर लगता था कि अब आपका ध्यान कौन रखता होगा।'

वाल्मीकि के आश्रम में भी अपने लिये सीता की चिन्ता की बात सुनकर राम ने धीरे से ‘हूँ' कहा और वे फिर गम्भीर हो गये।

कुछ देर तक शान्ति रही, फिर लव जो अभी तक सारे वार्तालाप में लगभग चुप ही थे, बोले,

‘पिताश्री!'

‘हाँ ‘

‘हमारे मन में अक्सर एक प्रश्न आता है।'

‘क्या?'

‘मात्र एक व्यक्ति के कहने से माँ और आपने इतना कठोर निर्णय क्यों लिया?'

‘वह मात्र एक व्यक्ति नहीं था, वे कुछ लोग थे; हाँ सामने एक ही व्यक्ति आया था।

‘कुछ लोग ही सही पर वे कुछ ही लोग तो थे।'

‘हाँ लव, वे कुछ ही लोग थे पर वहाँ एक विचार भी था जो हमें लेकर उनके मनों में पनप रहा था।'

‘ऐसा रहा होगा, पर उस विचार के निराकरण के दूसरे तरीके भी हो सकते थे पिताश्री।' कुश ने कहा।

‘कुश, तुम्हारे मन में शायद यह है कि उनसे बात करके उन्हें समझाया बुझाया जा सकता था।'

‘हाँ।'

‘कुछ लोगों ने यह प्रयास किया था।'

‘फिर?'

‘दुर्भावनाओं से ग्रसित लोग जब सिर्फ विरोध करने के लिये विरोध कर रहे होते हैं, तो वे लाख समझाने पर भी कहाँ मानते हैं।'

‘क्या वे दुर्भावनाओं से ग्रसित थे?'

‘तुम्हारी माँ जैसी स्त्री के चरित्र पर सन्देह कोई दुर्भावनाओं से ग्रसित व्यक्ति ही कर सकता है, कुश।'

कुश ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, बस एक गहरी साँस भरी, उन्हें अन्दर कहीं बहुत पीड़ा महसूस हुई थी।

‘दूसरे तरीके ये भी थे कि उसकी बात को बहुत छोटा समझकर उसकी अवहेलना की जा सकती थी; उस व्यक्ति को राजदण्ड का भय दिखलाकर चुप कराया जा सकता था या उसे कोई दण्ड या अधिक से अधिक प्राण दण्ड देकर इस तरह की बात करने वालों को कोई सन्देश दिया जा सकता था।'

‘हाँ, इनमें से कुछ भी किया जा सकता था,' कुश ने कहा।

‘किन्तु इस सबसे वह विचार मरता नहीं, अपितु किसी न किसी रूप में फैलता और शायद वह और भी बुरा होता।'

‘सम्भवतः ऐसा होता और फिर कुछ और उपाय करने पड़ते, किन्तु एक गर्भवती स्त्री को घर छोड़ने का फैसला लेने पर मजबूर नहीं होना पड़ता। क्या वही एक मात्र समाधान था?'

‘हाँ मैं जानता हूँ, बहुतों के मन में आज यह प्रश्न उठता होगा और आने वाले समय में भी यह कुछ लोगों को मेरी ओर उँगली उठाने का अवसर देता रहेगा।'

कुश और लव में से किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

‘पर एक बात और भी है कुश।' राम ने कहा।

‘क्या?'

‘समाज के प्रति जिम्मेदारियों को पूरा करने में अपने और अपने परिवार के हितों का बलिदान भी देना पड़ता है; यह पहले भी होता रहा है और आगे भी होता रहेगा।' कहकर राम चुप हो गये।

कुश और लव अभी भी मौन रहे। राम को लगा जैसे उन्हें यह बात कुछ तो ठीक लगी है, किन्तु कहीं कुछ विरोध और बहुत सी पीड़ा अभी भी उनके मन में है। अतः उन्होंने फिर कहा,

‘अच्छा हुआ, तुमने आज यह प्रश्न मेरे सम्मुख उठाया। स्वयं मेरे मन में भी तुम लोगों से इस सम्बन्ध में बात करने की इच्छा थी।

कुश, एक बार पुनः उनके चरित्र को लेकर उठने वाली चर्चा से हम दोनों बहुत अधिक आहत थे। इसने इतनी अधिक पीड़ा दी कि उस रात्रि हम सो नहीं सके। सारी रात हमने टहलते हुए बितायी। वह रात मैं कभी नहीं भूल सकूँगा।'

शायद इन बातों का स्मरण भी राम को बहुत पीड़ा दे रहा था और इसीलिये उनका स्वर कुछ भारी सा हो गया।

'हमारे मन राज-सत्ता और महलों की कुटिल राजनीति के प्रति अत्यधिक वितृष्णा से भर उठे थे। यही राजनीति थी, जिसके अभिशाप से हमारे पिता की अकाल मृत्यु हुई; हमने चौदह वर्ष सुदूर दक्षिण के दण्डकारण्य जैसे घने जंगलों में बिताये और तुम्हारी माँ को तो तेरह माह रावण की कैद में बिताने पड़े।

हमारे परिवार के हर व्यक्ति ने कुटिल राजनीति के इस दंश को बहुत अधिक झेला है।'

इतना कहकर राम कुछ पलों के लिये रुके।

'तुम लोग गर्भ में थे, इसलिये हमें इसकी चिन्ता बहुत अधिक थी कि तुम्हारी माँ तनाव में न रहें, किन्तु वे इस राजनीति में बहुत घुटन महसूस कर रहीं थीं। इस कारण वे महलों से कहीं दूर चली जाना चाहती थीं। अतः जब उन्होंने महल छोड़ने की बात की, तो मैंने भी उनका साथ देने का निश्चय किया, किन्तु वे इसके लिये बिल्कुल भी राजी नहीं थीं, क्योंकि भरत, लक्ष्मण या शत्रुघ्न में से कोई भी इस परिस्थिति में यहाँ का राज्य सँभालने के लिये तैयार नहीं होता और हम अयोध्या को भाग्य के भरोसे तो नहीं छोड़ सकते थे। यह अपने कर्तव्यों से पलायन होता।'

लव और कुश ने शान्त होकर ये बातें सुनीं। उन्हें स्मरण हो आया कि जब वे वाल्मीकि आश्रम में रह रहे थे, माँ उन्हें राजाओं के गुणों और कर्तव्यों के पाठ भी पढ़ाया करती थीं। शायद उन्हें लगता रहा होगा कि वे लोग भले ही ऋषि के आश्रम में पल बढ़ रहे हों, किन्तु भविष्य में उन्हें राज सत्तायें ही संभालनी होंगी।

उन्हें याद आया कि माँ यह भी कहा करती थीं कि प्रजा की भलाई और राजधर्म के पालन में राजा को परिवार का मोह और व्यक्तिगत स्वार्थों की बलि देने से भी नहीं हिचकना चाहिये।

पहले उन्हें वे बातें ठीक से समझ में नहीं आती थीं, किन्तु आज पिता के साथ बातचीत के बाद उन्हें माँ के उन शब्दों का अर्थ ही नहीं समझ में आने लगा था, अपितु अपने पिता की पीड़ा और उनके व्यवहार में छिपा उनका त्याग भी नजर आने लगा था।

उनके नेत्र आँसुओं से गीले हो गये। राम ने इसे देखा और फिर जैसे ढांढ़स बँधाने के प्रयास में बोले,

'महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारी माँ के जाने का निर्णय हमारी इसी पीड़ा की उपज था, किन्तु यह भी भूलने की बात नहीं है कि उस आश्रम में महल और उस जैसी सुविधायें भले ही नहीं थीं, पर वह कोई साधारण स्थान नहीं, अति पवित्र, गंगा के किनारे, महर्षि वाल्मीकि जैसे महान सन्त का आश्रम था। वह अत्यन्त रमणीक, ज्ञानी, सचरित्र और सहृदय लोगों का स्थान था। वहाँ तुम्हारी माँ बहुत से तनावों से मुक्त होकर रह सकीं, जो एक गर्भवती स्त्री के लिये बहुत आवश्यक होता है और तुम लोगों को बचपन से ही महर्षि वाल्मीकि का साथ मिला, जिसने तुम्हारे व्यक्तित्व को निखारा। यह छोटी बात नहीं है।'

राम की इस बात ने लव और कुश के घावों पर मरहम जैसा काम किया।

‘सच है, आप ठीक कहते हैं,' उन्होंने कहा।

‘क्या और प्रश्न भी शेष हैं?' राम ने पूछा।

‘नहीं तात, अब और कोई प्रश्न शेष नहीं है,' कुश ने कहा।

‘पर जब बात चल ही पड़ी है तो मैं तुम्हें कुछ और भी बताना चाहूँगा,' राम ने कहा।

‘क्या?'

‘एक तो जिस दण्डकारण्य में हमने वनवास का समय बिताया और जहाँ से तुम्हारी माँ का अपहरण हुआ उसके बारे में।'

‘हाँ तात, बताइये,' लव ने बालकों की तरह पूछा।

‘उस स्थान पर कभी एक मूर्ख और विद्याहीन राजा ‘दण्ड’ का राज्य था। उस राजा ने एक बार दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य की पुत्री अरजा को अकेली पाकर उसके साथ बलपूर्वक अनैतिक आचरण किया। इससे शुक्राचार्य अत्यधिक कुपित हुए और दैत्यों ने उस राजा के साम्राज्य को पूरी तरह नष्ट कर दिया और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर उसे जंगल में बदल दिया। कालान्तर में रावण ने उसे अपने आधिपत्य में लेकर अपनी बहन सुपर्णखा को दे दिया। यही जंगल राजा दण्ड के नाम पर दण्डकारण्य कहलाया।'

‘बहुत अच्छा लगा आपसे यह जानकर,' कुश ने कहा।

‘एक बात और भी है कुश!' राम बोले।

‘क्या?'

‘कुछ लोग इस तरह की बातें भी करते हैं कि मैंने शूद्र होने के कारण शम्बूक का वध कर दिया। वे कहना चाहते हैं कि मैं वर्णों के आधार पर व्यक्तियों में भेद करता हूँ।

‘हाँ, हमने यह सुना तो है।'

‘पर सोचो, यदि मैं वर्ण के आधार पर तपस्या करते हुये निर्दोष शम्बूक का वध कर सकता हूँ, तो मैंने सीता पर इतना बड़ा आरोप लगाने वाले व्यक्ति, जिसके कारण हमारा पूरा जीवन ही तार-तार हो गया और जो जाति से धोबी कहा जाता है, उसका वध क्यों नहीं करवा दिया।'

‘और कुश, यह भी सोचो कि मैंने अगस्त्य जैसे ब्राह्मण ऋषि, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने समुद्र पर विजय प्राप्त की थी, उनके या किसी अन्य ब्राह्मण ऋषि के आश्रम में भेजने के स्थान पर अवर्ण महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारी माँ के जाने पर अपनी सहमति क्यों दी? क्या उन दूसरे आश्रमों के द्वार हमारे लिये बन्द थे या मेरे होते हुए वहाँ तुम्हारी माँ की सुरक्षा को कोई खतरा हो सकता था।'

‘नहीं' कुश ने कहा।

‘एक बात समझने की है कुश,' राम ने कहा तो कुश और लव दोनों ने उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

‘इस संसार में हर व्यक्ति सत्य को जानने के लिये अपनी समझ और अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपना मानक लिये हुए है और उसी के अनुसार निष्कर्ष निकालता रहता है।

और यह भी कटु सत्य है कि झूठ, सत्य से अधिक फुर्तीला और तेजी से फैलने वाला होता है, किन्तु सत्य को कितना भी तोड़ा-मरोड़ा जाय, उस पर आक्रमण किये जायें, वह कहीं न कहीं अग्निकण की भाँति जलता और चमकता ही रहता है और कभी-कभी जब उजागर होता है

तो मान्यताओं से अत्यन्त भिन्न और चौंकाने वाला भी हो सकता है।' राम ने कहा।

'सच है,' कह कर कुश और लव ने अपनी सहमति प्रकट की।

वातावरण में गम्भीरता भर गयी थी और सीता की पीड़ाओं की बात से बहुत सी उदासी भी। शाम ढल चुकी थी। वे उठे और महल की ओर लौटने के लिये रथों की ओर बढ़ चले।

* * *

ताड़का वध, सीता के स्वयंवर में धनुर्भंग, और परशुराम का पलायन आदि बहुत सी घटनाए थीं, जिन्होंने राम को जनमानस में एक पराक्रमी राजकुमार की भाँति स्थापित किया था।

उधर, पत्थर बनी अहिल्या के सामान्यीकरण, नदी के पार उतारने के लिये केवट से उनका व्यवहार, अति साधारण भील स्त्री के जूठे बेर खा लेना, पर उसकी भावनाओं को चोट नहीं पहुँचाना, आदि वे घटनायें थीं जिनके कारण वे लोगों के दिलों पर राज करने लगे थे।

अब रावण और कुम्भकर्ण का वध और भारत के दक्षिण तक अयोध्या के प्रभाव की स्थापना ने उन्हें एक प्रभावशाली और प्रबल सम्राट के रूप में स्थापित कर दिया था।

इतने लम्बे समय में राम ने परिस्थितियों के बहुत से उतार चढ़ाव देखे थे। कष्ट उठाये और युद्ध लड़े थे।

उन्होंने कभी भी हार का सामना नहीं किया था, किन्तु सीता के जाने के बाद उन्हें लगा था, जैसे वे सब कुछ हार गये हैं।

जिन राम ने जीवन में कभी धैर्य नहीं खोया, उन्हें धैर्य टूटता सा लगा था। उन्हें लगा था जैसे वे अपनी इस हार पर फूट-फूट कर रो लें, किन्तु मर्यादाए आड़े आ गयी थीं। वे खुलकर रो भी नहीं सके थे। पीड़ाएं सीने में घनीभूत होकर रह गयीं थीं।

लव और कुश से इस चर्चा के बाद राम वापस महल में लौटे, तो सीता की स्मृतियों से घिरे हुए थे। वे अपने कक्ष में पहुँचे और खिड़की के पास खड़े हो गये। सामने दूर तक फैला हुआ आसमान था। राम ने उस ओर देखा और आँखों को ऐसे बन्द कर लिया, जैसे वे आसमान को आँखों में भर लेना चाहते हों।

वर्षों बाद मिले थे तुम,
तब कितना कुछ कहना सुनना था,
लेकिन ऐसा क्यों होता है,
हृदय, समय की पदचापें
सुनता रहता है,
और फिसल जाता है,
सारा कुछ हाथों से।

उन्हें याद आया कि सीता के वाल्मीकि आश्रम जाने के बाद जब उन्हें लगा था कि सीता वहाँ किसी कुटी में रह रही होंगी, तब उन्होंने निश्चय किया था कि वे राज्य के सारे कार्य करते हुए स्वयं भी कुटी में ही रहेंगे, और फिर उन्होंने महल के पिछले भाग में एक कुटी बनवाकर उसमें रहना शुरू कर दिया था। वहाँ कुछ साधारण जीवनोपयोगी वस्तुएं ही थीं और एक साधारण सी चटाई ही उन बारह वर्षों तक उनका बिस्तर रही।

यद्यपि सीता का वाल्मीकि आश्रम जाना और राम का अपने कर्तव्य-पालन हेतु अयोध्या

में ही बने रहना, उन दोनों की सहमति से ही हुआ था, फिर भी राम के मन में कहीं न कहीं सीता के इस प्रकार घर छोड़ने और फिर उस अवस्था में उनका साथ न दे पाने को लेकर गहरी पीड़ा थी।

अपनी सारी आवश्यकताओं को कम करके कुटिया में रहना उनकी इस पीड़ा को कम करता था, और अब इस प्रकार सीता के संसार त्याग देने के बाद से राम के मन में संसार के प्रति विरक्ति की भावना भर गयी थी। यद्यपि जिम्मेदारियाँ उन्हें सब कुछ छोड़कर वैराग्य नहीं लेने दे रहीं थीं, किन्तु फिर भी यह भावना उनकी बातों और व्यवहार से बार-बार सामने आ जाती थी।

कभी-कभी उन्हें लगता था कि उनका मन आसमान में उड़ते हुए एक बादल के टुकड़े की भाँति हो गया है, जिसमें किसी भी दिशा में जाने की कोई इच्छा नहीं हैं। उनके सारे कार्यों के पीछे सिर्फ कर्तव्य-बोध रह गया था।

विवाहोपरान्त जीवन में दो बार वे सीता से अलग रहे थे। एक बार तब, जब वे रावण की कैद में थीं और दूसरी बार तब, जब सीता बारह वर्ष तक वाल्मीकि के आश्रम में थीं।

उन्हें याद आया कि जब और जितने दिन सीता उनसे दूर रहीं, लगभग हर कार्य में उन्हें ध्यान आता रहता था कि सीता होतीं तो क्या कहतीं? उन्हें कैसा लगता? राम को बराबर सीता से मिलने की आशा भी रही और प्रतीक्षा भी। उनसे मिलने की कोई भी कल्पना राम के मन को व्यग्र कर दिया करती थी, किन्तु अब, जब सीता इस संसार को छोड़ चुकी थीं, वे भावनायें भी कहीं खो गई थीं और उन्हीं के साथ सारे मोह भी।

उस छोटी सी आयु में भी सीता ने रावण की कैद में जिस दृढ़ता का परिचय दिया था, और फिर वाल्मीकि के आश्रम में बारह वर्ष उन्होंने जिस निरपेक्ष भाव से बिताये थे, राम उससे अभिभूत थे।

रावण की बात मन में आयी तो यह भी ध्यान आया कि रावण स्वयं भी पुरुषों के अन्याय का शिकार, एक स्त्री का पुत्र था, किन्तु फिर भी वह स्वयं स्त्रियों के साथ अन्याय करने से कभी नहीं हिचका।

7. धूप भी, छायाएँ भी

उस दिन, जब दिन भर की थकान देने वाले कार्यों के बाद राम, शाम को वापस लौटे और अपने कक्ष में पहुँचे, तो नित्य की तरह ही सेवक उनके बदलने के लिये वस्त्र और हाथ-पैर आदि धोने के लिये जल लेकर उपस्थित हुए।

हाथ पैर धोकर और वस्त्र बदलकर उन्हें ताजगी महसूस हुई। वे आसन पर बैठे ही थे कि उनके लिये कुछ जलपान आ गया। उन्होंने वह जलपान लेने के लिये हाथ बढ़ाया, किन्तु इसके साथ ही उन्हें ध्यान आया कि यदि सीता होतीं तो इस समय वे यहीं उपस्थित होतीं।

शाम को जब वे अपने कार्यों को निपटाकर आते थे, सीता सदैव वहाँ उपस्थित ही नहीं रहती थीं, उनके लिये जलपान तैयार होते समय उनकी रुचियों का ध्यान भी रखती थीं।

राम को वह समय याद आ गया, फिर अचानक उन्हें अपने लंका से लौटने की बात स्मरण हो आयी और चलचित्र की भाँति उनकी आँखों के सामने वह दृश्य चलने लगा जब वनवास के बाद सीता और वे लंका से अयोध्या के लिये चले थे।

दोनों के पास एक दूसरे को बताने के लिये और एक दूसरे से पूछने के लिए पता नहीं कितनी बातें थीं, किन्तु पुष्पक विमान में लक्ष्मण, हनुमान, और विभीषण आदि साथ थे, इस कारण वे दोनों गम्भीर मुद्रा में ही बैठे रहे और चाहते हुए भी एक दूसरे से कुछ नहीं कह सके।

राम को याद आया कि प्रथम एकान्त मिलते ही उन्होंने सीता के पास आकर उनका हाथ थामकर पूछा था।

'सीते!'

'हूँ।'

'कैसे कटे इतने दिन?'

इसके उत्तर में सीता ने नेत्र उठाकर राम की ओर देखा। उनके नेत्र मिले और फिर सीता, राम के सीने से लगकर बुरी तरह से रो पड़ीं। राम भी अपने को नहीं रोक सके। सँभलते-सँभलते भी उनकी आँखों से बहने वाले आँसुओं ने उनका चेहरा भिगो दिया।

राम के आँसू देखकर सीता अपना रोना भूल गयीं। उन्होंने अपने आँचल से राम के आँसू पोंछे, फिर एक दूसरे की ओर देखा, और फिर सहसा दोनों हँस पड़े।

'अब हम रो किसलिये रहे हैं? राम ने कहा।

'हाँ!' सीता बोलीं और फिर दोनों एक बार फिर हँस पड़े।

इसके बाद बहुत दिनों तक जब भी उन्हें समय मिलता, वे आपस में वनवास के समय के और विशेष रूप से सीता के लंका प्रवास के समय के, अपने अपने अनुभवों की बातें किया करते। ऐसे ही क्षणों के मध्य एक दिन राम ने कहा,

'सीते!'

'हाँ।'

‘कभी-कभी मेरे मन में एक प्रश्न उठता है।'

‘क्या?'

‘मन्दोदरी ने रावण की मृत्यु के बाद विभीषण की राजमहिषी बनना कैसे स्वीकार कर लिया?'

‘मुझे भी लगता है यह प्रश्न बहुतों के मन में उठता होगा!' सीता ने कहा।

‘हाँ, शायद; क्या तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर पता है?'

‘ठीक तो नहीं कह सकती, किन्तु मन्दोदरी, रावण के साथ जिन परिस्थितियों से गुजरी, उसमें यह अस्वाभाविक भी नहीं लगता।'

‘किन परिस्थितियों से?' राम ने प्रश्न किया।

‘जितना पता है, बताती हूँ,' सीता ने कहा।

* * *

भारत के दक्षिण महासागर में स्थित छोटे-बड़े द्वीपों में से एक छोटा सा द्वीप बहुत हलचलों से भरा हुआ था। इन द्वीपों पर दानवराज मकराक्ष का राज्य था और यह द्वीप उसकी राजधानी था। रावण और एक दैत्य कन्या इनके बन्दी थे। दैत्यकन्या रावण से अत्यधिक प्रेम करती थी, यद्यपि यह प्रेम एकतरफा ही था।

रावण ने रक्ष संस्कृति की स्थापना की थी और वह दैत्यों और दानवों को विशेष रूप से इसी संस्कृति के नीचे लाना चाहता था। इसी प्रयास में उसका, दानवराज मकराक्ष से भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें रावण पराजित हुआ और मकराक्ष द्वारा बन्दी बना लिया गया। यह दैत्यकन्या भी इसी बन्दी बनाये गये दल में थी।

मकराक्ष जब समुद्र के रास्ते इन्हें इस द्वीप पर ला रहा था, तभी भयंकर समुद्री तूफान आया जिसमें बहुत सी नावें समुद्र में उलट गयीं। दैत्यकन्या की माँ और लगभग अर्धमूर्छित हालत में स्थित रावण की नावें भी ऐसी ही दुर्भाग्यशाली नावों में थीं।

उस भयंकर तूफान में भी उस कन्या ने धैर्य नहीं खोया और अत्यन्त साहस का परिचय देते हुए किसी प्रकार अपनी नाव को रावण के पास लायी और सहारा देकर उसे अपनी नाव में चढ़ा लिया, रावण तो बच गया किन्तु इतनी देर में उसकी माँ को लहरों ने निगल लिया।

सच तो यह है कि दैत्यकन्या को रावण से इतना अधिक प्रेम था कि उसने अपनी माँ को छोड़कर रावण की प्राण-रक्षा की। मकराक्ष तक यह बात पहुँच गयी, अतः उसने रावण के साथ-साथ उस कन्या को भी मृत्यु-दण्ड देने का निश्चय किया।

मकराक्ष के आदेश से रावण और दैत्यकन्या की बलि देने का निश्चय किया गया। वे रस्सियों से बाँध कर लाये गये और बलि वेदियों से बाँध दिये गये। इस स्थिति में भी दैत्यकन्या की आँखें रावण पर ही टिकी हुई थीं। दोनों के चेहरों पर मृत्यु का डर नहीं था।

इस बलि को देखने के लिये दानवों के समूह उमड़े हुए थे। ऐसा लगता था जैसे सारा द्वीप वहीं पर एकत्रित हो गया हो। इस भीड़ में और एक जोड़ी आँखें रावण पर मुग्ध भाव से टिकी हुई थीं, और वे आँखें थीं मय नामक दानव की पुत्री मन्दोदरी की।

मकराक्ष के आदेश से फरसा लिये एक दानव रावण और दैत्य-कन्या की बलि देने के लिये आगे बढ़ा। वह पहले रावण का सिर काटना चाहता था, तभी वह दैत्य-कन्या बोल उठी,

‘ठहरो!’

फरसा लिये दानव ठिठका। सारी भीड़ की निगाहें उस दैत्य-कन्या की ओर उठ गयीं।

'मैं कुँआरी हूँ,' उसने कहा, 'अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये पहले मेरी बलि लो, इससे वे शीघ्र पूर्ण होंगी।'

कन्या के इस आग्रह से वहाँ सन्नाटा छा गया। दो हृदय उस अनाम दैत्य-कन्या के प्रति श्रद्धा और पीड़ा से भर उठे, और वे थे रावण और मन्दोदरी के।

फरसा लिये हुये दानव ने मकराक्ष की ओर देखा और उसकी स्वीकृति पाकर दैत्य-कन्या की ओर बढ़ा। फरसे के एक ही वार में उस कन्या का सिर उछलकर दूर जा गिरा। खून की धारायें फूट निकलीं। रावण ने नेत्र बन्द कर लिये और मन्दोदरी मूर्छित होते-होते बची।

तभी, बहुत ही शक्ति से छोड़ा हुआ एक बाण अति तीव्र गति से आकर उस दानव को वेध गया। समुद्र के रास्ते रावण की सहायता के लिये आये राक्षसों के दल ने दानवों पर भयंकर आक्रमण कर दिया था। बलि का स्थान युद्ध का स्थान बन गया।

राक्षस अचानक आये थे। उन्होंने बहुत तेज और भयंकर युद्ध शुरू कर दिया था। मकराक्ष और उसकी सेना जब तक इस अचानक आक्रमण से सँभलते, तब तक कई राक्षस योद्धा युद्ध करते और रास्ता बनाते हुए, रावण तक पहुँच गये थे।

राक्षसों ने जल्दी से रावण को मुक्त कराया। भयंकर युद्ध हुआ। मकराक्ष रावण के हाथों मारा गया। मकराक्ष के अधीन द्वीप रावण की रक्ष-संस्कृति के अधीन हो गये।

* * *

सुबह का समय था। रावण समुद्र के किनारे बैठा हुआ था। बहुत से विचार उसके मन में आ जा रहे थे। उसने मकराक्ष के सम्पूर्ण साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। यह रावण की बड़ी विजय थी, किन्तु लंका अभी भी कुबेर के पास थी। उस पर अधिकार करना रावण और उसके नाना सुमाली का सबसे बड़ा लक्ष्य था।

रावण के मस्तिष्क में बलि के समय के दृश्य बार-बार कौंध रहे थे। वह अनाम दैत्य-कन्या रावण के मन पर छायी हुई थी। उसका प्रेम और त्याग अद्भुत था। उसने दो बार रावण की जान बचायी थी। एक बार समुद्री तूफान के समय और दूसरी बार अपनी बलि देकर।

आज तक के इतने जीवन में, रावण पर इतना बड़ा एहसान किसी ने नहीं किया था। वह रावण से प्रेम करती थी, किन्तु ऐसी कितनी ही लड़कियाँ आज तक रावण के जीवन में आ चुकी थीं। रावण उस दैत्य-कन्या के त्याग से अभिभूत था। रावण के पहले अपनी बलि देने का आग्रह करता उसका चेहरा बार-बार रावण की आँखों के आगे घूम रहा था।

यदि उसने रावण से पहले अपनी बलि देने का प्रस्ताव न रखा होता तो रावण आज दुनिया में नहीं होता।

दो-दो बार मेरे प्राण बचाने वाली उस कन्या को विधाता ने ही मेरे लिए भेजा होगा। 'मैं उसे कभी भूल नहीं पाऊँगा' रावण ने सोचा। उसने मकराक्ष को घायल करने के बाद जीवित ही अग्नि-कुण्ड में फेंक दिया था।

इतना भयंकर प्रतिशोध भी उसके मन को शान्त नहीं कर पा रहा था और इतनी बड़ी विजय के बाद भी रावण बहुत प्रसन्न नहीं था। बेचैन रावण उठकर खड़ा हुआ। अँगड़ाई ली और इधर-उधर देखता हुआ टहलने लगा।

तभी उसने देखा, एक वृद्ध दानव, एक युवती कन्या के साथ उसकी ओर चला आ रहा

था। रावण उनके, पास आने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही पलों में वे पास आ गये।

'आप विश्रवा मुनि के पुत्र रावण ही हैं न?' वृद्ध ने पूछा।

'हाँ,' रावण ने कहा।

'मैं मय हूँ और यह मेरी कन्या मन्दोदरी है।'

'आप दानव हैं?'

'हाँ, किन्तु आप की इस विजय के बाद मैं आपकी प्रजा पहले हूँ।'

'हूँ' रावण ने कहा।

'मैं कुछ निवेदन करने की अनुमति चाहता हूँ।'

'कहें।'

'मैं अकेला और वृद्ध हो चुका हूँ, मेरी पत्नी जो एक अप्सरा थी, बहुत समय पूर्व मुझे छोड़कर जा चुकी है।'

रावण ने चुपचाप सुना, कोई उत्तर नहीं दिया।

'यह कन्या उसी की पुत्री है।'

'अच्छा।'

'मैं अब अशक्त हो चला हूँ और अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होना चाहता हूँ।'

'आप बतायें कि मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ!' रावण ने कहा।

'मेरी यह कन्या, अत्यन्त सुघड़ और सुलक्षणी है। अब यह विवाह योग्य हो चुकी है। मैं चाहता हूँ कि आप इसे ग्रहण करें।' मय ने कहा।

अब रावण ने मन्दोदरी की ओर दृष्टि की। वह सिर झुकाये खड़ी थी। रावण उसकी रूप-राशि देख अचम्भित रह गया। किसी अप्सरा की यह कन्या स्वयं भी किसी अप्सरा से कम नहीं थी।

'मुझे आपका आग्रह स्वीकार है।' उसने कहा।

मय ने तुरन्त लकड़ियाँ एकत्रित कीं। अग्नि प्रज्ज्वलित की। रावण के वस्त्र में मन्दोदरी का वस्त्र बाँध कर गाँठ लगायी और स्वयं ही मन्त्रोधार करने लगा। मन्दोदरी और रावण ने अग्नि के सात फेरे लिये। विवाह सम्पन्न हुआ। मय ने अपना सबसे घातक अस्त्र रावण को उपहार में दिया और वहाँ से चला गया।

* * *

मकराक्ष के जाने के बाद रावण और मन्दोदरी अकेले रह गये थे। कुछ ही समय के अन्तराल में परिस्थितियाँ एक बार पुनः किस तरह बदल गई थीं। रावण फिर बहुत अचम्भित था।

मात्र एक दिन पूर्व मृत्यु उसके कितने करीब से गुजर चुकी थी।

रावण को लगा जैसे वह किसी बहुत लम्बी और कठिन यात्रा से आया है और बहुत थक गया है।

'जीवन कैसे-कैसे खेल खेलता है' उसने सोचा और थके हुए पथिक की भाँति शान्त बैठ गया।

मन्दोदरी पास बैठी, सिर झुकाये, पैर के अँगूठे से भूमि कुरेद रही थी। वह रावण की ओर से किसी पहल की प्रतीक्षा में थी, किन्तु कुछ देर तक जब इसी प्रकार शान्ति बनी रही तो उसने नेत्र उठाकर रावण की ओर देखा।

एक दिन पूर्व ही बलि के स्थान पर जो कुछ हुआ था, उसे मन्दोदरी ने अपनी आँखों से देखा था। बलिवेदी से बँधे हुए रावण के मुख पर उस समय भी कान्ति थी, दैन्य नहीं था। उसके इसी भाव ने उसी समय मन्दोदरी को रावण का प्रशंसक बना दिया था।

रावण के चेहरे पर कान्ति और गाम्भीर्य, भुजायें बलिष्ठ, सीना तना हुआ और ऊँचा था। वह पुरुषोचित सौन्दर्य का स्वामी था।

'आप कुछ सोच रहे हैं?' मन्दोदरी ने उसे लक्ष्य करते हुए कहा।

रावण कुछ चौंक सा गया।

'अँ, हाँ...नहीं...कुछ नहीं ' उसने कहा।

'क्या मकराक्ष से हुए युद्ध के बारे में?' मन्दोदरी ने कहा।

'नहीं, वह बीत चुका है। तुम कल वहीं थीं क्या?'

'हाँ, और मैं बहुत डर भी गयी थी। '

'स्त्रियों का हृदय कोमल होता है, शायद इसीलिये ऐसा हुआ होगा।'

'किन्तु वह दैत्य-कन्या कितनी निडर थी।'

'हाँ, उसने दो बार मेरी प्राणों की रक्षा की है। यदि वह दानवों से स्वयं की बलि मुझसे पहले लेने का अनुरोध न करती तो राक्षसों के वहाँ पहुँचने तक वह जीवित होती और मैं मर चुका होता।'

'निश्चय ही आप दोनों में बहुत प्रेम रहा होगा।'

मन्दोदरी के स्वर में नारी-सुलभ ईर्ष्या भी थी। रावण ने इसे समझा और उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। मन्दोदरी ने भी अपनी इस बात पर रावण की चुप्पी को समझा। कुछ देर बाद रावण ने कहा,

'मैं उसके प्रति हमेशा श्रद्धावनत रहूँगा।'

'मैं भी!' मन्दोदरी ने कहा।

अब रावण ने मन्दोदरी के मुख की ओर देखा। मन्दोदरी का सौन्दर्य उसे अभिभूत कर गया। उसे लगा इतना सौन्दर्य उसने पहले कभी नहीं देखा है।

'तुम किसी कवि की कल्पना से भी अधिक सुन्दर हो मन्दोदरी!'

मन्दोदरी शर्म से अरुण हो उठी।

'और कल्पना सीमायें नहीं जानती।' रावण ने फिर कहा।

मन्दोदरी ने अपने नेत्र ऊँचे कर रावण की ओर देखा। वे बड़े और बोलते हुए से नेत्र थे। रावण ने उनकी भाषा समझी। मन्दोदरी का हाथ अपने हाथ में लिया और कहा,

'और प्रेम भी सीमायें नहीं जानता है मन्दोदरी।'

मन्दोदरी ने रावण के शब्द सुने, सिर थोड़ा ऊँचा किया और नेत्र बन्द कर लिये। 'सीमा रहित प्रेम! क्या मैं सचमुच इतनी भाग्यवान हूँ?' उसने सोचा।

शब्द मन्दोदरी को छू गये थे। वह शब्दों के इस स्पर्श को महसूस करने का प्रयास करने लगी, बोली कुछ नहीं।

'तुम मेरी बातों का कोई उत्तर नहीं दे रही हो!' रावण ने कहा।

'ये बातें हैं क्या?' मन्दोदरी ने सोचा। वह जैसे किसी स्वप्नलोक में थी, जहाँ से वापस नहीं आना चाहती थी,

‘उत्तर दो मन्दोदरी!' रावण ने कहा।
‘किस बात का?' मन्दोदरी ने पूछा।
‘मैंने अपनी बात कह दी है मन्दोदरी।' रावण ने कहा।
‘ये बातें हैं क्या?' मन्दोदरी ने प्रश्न किया।
रावण नहीं समझ पाया कि इसका क्या उत्तर दे, फिर भी उसने कहा,
‘तुम्हें क्या लगता है?'
‘अगर ये बातें हैं तो मुझे इनकी छुअन क्यों महसूस हो रही है?'
‘क्या तुम कविता लिख रही हो?'
‘नहीं, पर कविता सुन रही हूँ।'
‘फिर भी कुछ तो कहो।'
‘मैंने अपनी बात कह दी है।'
‘कब?'
‘अभी।'
‘मैंने कुछ भी नहीं सुना।'
‘किन्तु मैं कह चुकी हूँ' मन्दोदरी ने कहा।
‘अवश्य ही मेरी समझ में कुछ कमी है।' कहकर रावण हँस पड़ा और मन्दोदरी ने धीरे से मुस्कराते हुए अपने अधर तो आँचल से ढककर छुपा लिये, किन्तु हँसती हुई आँखें वह नहीं छुपा पाई।
‘तुम्हारे हँसते हये नेत्र और मुस्कराते अधर मेरे मन में संगीत सा भर रहे हैं मन्दोदरी!'
रावण की इस बात पर मन्दोदरी ने लजाकर नेत्र झुका लिये।

मौन तो है
किन्तु ये अधरों की हलचल!
और फिर तिरछा सा होना,
और पल भर के लिए
यह मुस्कराना
कह गया तो है...
बहुत कुछ।

कुछ देर और मौन रहा, फिर रावण ने कहा,
‘आओ, चलें।'
दोनों उठकर खड़े हो गये। मन्दोदरी रावण के पीछे हो गई। रावण ने ठहरकर कहा,
‘पीछे नहीं, मेरे साथ चलो।'
मन्दोदरी संकोच में पड़ गई। उसने कहा,
‘एक प्रश्न है।'
‘क्या?'
‘आपके प्रेम पर मेरा...' मन्दोदरी ने बात अधूरी छोड़ दी। रावण ने मन्दोदरी के भाव को समझा।’

‘तुम्हारा अधिकार है।' उसने कहा

‘सच?'

‘हाँ सच, और यह सदैव तुम्हारा एकाधिकार रहेगा।'

मन्दोदरी को लगा, रावण की इस बात के बाद उसके पास महसूस करने के लिये तो बहुत कुछ है, किन्तु कहने के लिए कुछ भी शेष नहीं है। वह चुपचाप रावण का अनुगमन करने लगी।

कुछ दूर चलने के बाद रावण ने फिर कहा -

‘मेरे साथ आओ मन्दोदरी, पीछे नहीं।,

‘आपका अनुगमन ही मेरा रास्ता है।’

‘नहीं, हमें साथ ही चलना है, आगे पीछे नहीं।' कहते हुए रावण हाथ पकड़कर मन्दोदरी को अपने बराबर में ले आया।

मन्दोदरी को अपने सौभाग्य पर गर्व सा होने लगा।

* * *

कुछ समय बाद रावण ने लंका पर चढ़ाई कर दी। वहाँ कुबेर का राज्य था। कुबेर ने उससे युद्ध नहीं किया और अपने पिता विश्रवा मुनि के पास चला गया। विश्रवा मुनि ने उसे भाई से युद्ध न करने और लंका पुरी छोड़ कर गन्धमादन पर्वत पर अलकापुरी बसाकर रहने की सलाह दी। कुबेर वहीं चला गया और लंका पर सहज ही रावण का अधिकार हो गया।

रावण ने मन्दोदरी से अपने प्रेम पर एकाधिकार की बात अवश्य कही थी, किन्तु जैसे-जैसे उसके साम्राज्य का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे उसका अन्तःपुर बहुत सी सुन्दरियों से भरता चला गया।

शुरू-शुरू में मन्दोदरी इससे बहुत आहत महसूस करती थी, फिर धीरे-धीरे उसे यह सब सहने की आदत सी हो गयी, किन्तु एक अन्य घटना ने उसे बहुत अधिक दुखी कर दिया।

8. मयतनयाएँ

दण्डकारण्य के दक्षिण में स्थित, वैजयन्तपुर में असुरपति शम्बर का साम्राज्य था। यह एक अति समृद्ध राज्य था। इसकी स्वामिनी शम्बर की पत्नी मयतनया मायावती लगभग अट्ठाइस वर्ष की युवती थी। उसका शरीर सौष्ठव व रूप, देखने वाले की आँखों में चमक भर देता।

पति शम्बर, उससे लगभग दूनी आयु का था और अधिकतर शासकीय कार्यों या समय-समय पर होने वाले युद्धों में लगा रहता था। अभी फिर वह एक देव-असुर संग्राम में गया हुआ था।

इस युद्ध में पांचाल नरेश दिवोदास और अयोध्या नरेश दशरथ एक ओर, और शम्बर तथा छत्तीस असुर नरेश दूसरी ओर थे।

दशरथ की पत्नी कैकेयी भी उनके साथ आयी थीं। वे युद्ध कला में प्रवीण वीरांगना थीं और दशरथ के रथ का संचालन कर रही थीं।

शम्बर के न होने के कारण मयतनया बहुत अकेलापन महसूस कर रही थी। वह उम्र का अन्तर होते हुए भी शम्बर के प्रति समर्पित थी। मयतनया महल के प्रांगण में उदास और विचारमग्न बैठी थी।

शम्बर हर बार युद्ध में जाते समय मयतनया से मिलकर, विदा लेकर जाता था, किन्तु इस बार वह बिना उससे मिले ही चला गया था और यह उसके लिये किसी आघात से कम नहीं था।

विचारों में डूबी मयतनया उठी और महल के प्रांगण में स्थित बाग में टहलने लगी। बहुत धीरे-धीरे पैर उठाती मयतनया बस भूमि की ओर ही देख रही थी। कुछ देर तक टहलने के बाद वह एक वृक्ष का सहारा लेकर बैठ गयी। उसने अपना सिर, वृक्ष के तने से टिकाया तो दृष्टि आसमान की ओर चली गयी।

कुछ देर बाद मयतनया ने नेत्र बन्द कर लिये। मन स्मृतियों में खो गया।

मयतनया, रावण की पत्नी मन्दोदरी की सगी बड़ी बहन थी। रावण एक दिन अचानक वैजयन्तपुर आ गया। पुरुषोचित सौन्दर्य का स्वामी रावण, शम्बर से आयु में बहुत छोटा था। शम्बर ने बहुत आत्मीयता से उसका स्वागत किया।

उसे भले ही अतिथि-भवन में ठहराया गया था, किन्तु शम्बर और मयतनया के, रावण के प्रति स्नेह के कारण उसे महल में कहीं भी आने-जाने की छूट थी।

इसी छूट का लाभ उठाकर रावण एक दिन शम्बर की अनुपस्थिति में महल के अन्तःपुर के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया। द्वार पर पहरे पर खड़ी स्त्री ने उसे रोका, किन्तु रावण उसकी अवज्ञा करता हुआ 'मैं रावण हूँ' कहकर आगे बढ़ गया। पहरेदार स्त्री रावण का शम्बर से रिश्ता जानती थी, अतः वह तुरन्त कुछ निर्णय नहीं कर पायी और तब तक रावण, मयतनया के कक्ष में प्रवेश कर चुका था।

रावण को इस भाँति कक्ष में देख कर मयतनया विस्मय से भर उठी। वह हड़बड़ा कर

उठी और अपने वस्त्र ठीक करते हुये बोली।

'क्या हुआ रक्षपति, सब कुशल तो है! इस तरह अचानक?'

'मैं आपसे मिलना चाहता था।'

'तो समाचार भिजवाते, मैं आपको बुलवा लेती।'

रावण के मुख पर मुस्कान दौड़ गयी। इसमें कुटिलता थी। उसने कहा,

'फिर मैं इस साक्षात सौन्दर्य को उसके स्वाभाविक रूप में कहाँ देख पाता।'

रावण के इस वाक्य से मयतनया का मुख लज्जा और क्रोध से लाल हो गया। उसने तीव्र स्वर में कहा, 'रावण!' मयतनया के इस सम्बोधन में क्रोध और चेतावनी दोनों थे।

उसके इस स्वर ने रावण की हँसी गायब कर दी। वह गम्भीर हो गया।

'देवि, यह मात्र परिहास था, किन्तु आप मूर्तिमान सौन्दर्य तो हैं ही।'

मयतनया ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद उसका मन शान्त हुआ तो उसने रावण को एक आसन की ओर इंगित कर कहा -

'बैठें!'

रावण बैठ गया। उसने देखा, मयतनया के चेहरे पर क्रोध के भाव कम हो रहे हैं, तो उसने पुनः कहा,

'मैं आपके सौन्दर्य पर अनुरक्त हूँ, मुझे कृतार्थ करें।'

मयतनया का चेहरा पुनः कठोर हो गया। उसने कहा-

'रावण तुम भूल रहे हो, मैं तुम्हारी पत्नी की बड़ी बहन हूँ, तुम्हारी भी अग्रजा हुई।'

'भूला नहीं हूँ देवि।'

'और रावण, मैं जिसकी पत्नी हूँ, मेरा मन उसके प्रति पूर्ण समर्पित है।'

'ठीक है किन्तु...।'

इस 'किन्तु' ने मयतनया का क्रोध बढ़ा दिया।

'रावण, तुम मेरे कक्ष से इसी समय निकल जाओ अन्यथा.....,'

'अन्यथा क्या देवि?'

'अन्यथा मैं सेविकाओं से तुम्हें बलपूर्वक बाहर करने के लिये कहूँगी।'

रावण इससे विचलित नहीं हुआ, अपितु हँसा। वह उठकर खड़ा हुआ, और मयतनया की ओर बढ़ता हुआ बोला,

'मैं आपके अप्रतिम सौन्दर्य से अभिभूत हूँ, मेरा निवेदन स्वीकार करें।'

मयतनया ने रावण के नेत्रों में वहशीपने की झलक देखी। उसका चेहरा सख्त हो गया और वह हाथ उठाकर रावण को रोकने जैसी मुद्रा बनाते हुए, जोर से बोली,

'नहीं!'

किन्तु रावण ने मानो सुना ही नहीं। वह मयतनया के पास आने लगा। वह पीछे हटी, किन्तु रावण आगे बढ़कर उसके और अधिक पास आ गया। मयतनया पीछे हटते हुए लड़खड़ा गयी, किन्तु तभी उसका हाथ एक पात्र से टकराया। मयतनया ने उसे ही उठाकर रावण को फेंक कर मारा, किन्तु रावण हँसते हुये एक ओर झुककर उसके वार को बचा गया।

मयतनया द्वार की ओर भागी। रावण ने उसका वस्त्र पकड़ा और खींच लिया। मयतनया चीख पड़ी, किन्तु रावण ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और अपने बाहुपाश में

जकड़कर उसका मुख चूमने लगा।

ठीक इसी समय आँधी की भाँति शम्बर ने प्रवेश किया। रावण चौंक कर हट गया। उसके चेहरे पर खिसियाहट जैसे भाव उभर आये। मयतनया, रावण से छूटते ही दौड़कर शम्बर से सटकर खड़ी हो गई। वह काँप रही थी। उसकी साँसें तीव्र, चेहरा लाल और धड़कनें बढ़ी हुई थीं।

शम्बर बहुत क्रोध के साथ रावण की ओर बढ़ा। उसने रावण का हाथ पकड़कर लगभग मरोड़ दिया और घसीटते हुये महल के बाहर पड़े मैदान के एक कोने में ले जाकर उसे ढकेलकर खड़ा कर दिया।

शम्बर क्रोध से पागल सा हो रहा था, किन्तु रावण ने शम्बर का किसी भी भाँति कोई प्रतिरोध नहीं किया। मैदान में वह सिर झुकाकर शम्बर के सम्मुख खड़ा हो गया।

'रावण, शस्त्र उठा, युद्ध कर।' शम्बर ने कहा।

'नहीं, आप मुझे दण्डित करें।'

शम्बर की आवाज ऊँची हो गयी। वह लगभग चीख कर बोला।

'रावण शस्त्र उठा।'

'मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा, आप मुझे दण्डित करें,' रावण फिर बोला।

शम्बर बहुत क्रोध में था। उसने पैर से रावण को बहुत कसकर ठोकर मारी। अचानक हुए इस प्रहार से रावण गिरते-गिरते बचा।

'बातें मत बना रावण, शस्त्र उठा! युद्ध कर!' शम्बर ने कहा।

इस अपमान के बाद रावण ने शस्त्र उठा लिया। प्रारम्भ में रावण, शम्बर पर वार करने से बचता हुआ, केवल उसके वार बचाता रहा, किन्तु कुछ देर बाद ही उसे लगने लगा कि शम्बर के वारों से उसकी जान भी जा सकती है। तब वह भी शम्बर पर वार करने लगा। युद्ध हुआ और कभी शम्बर, रावण पर और कभी रावण, शम्बर पर भारी पड़ता, किन्तु अन्त में रावण पराजित हुआ। शम्बर ने उसे कसकर पीटने के बाद एक अँधेरे कुएं में कैद करवा दिया।

यह सारा प्रसंग मयतनया की आँखों में चलचित्र की भाँति आया। वह बेचैन हो उठी।

इस सारे प्रसंग में मयतनया का दोष न होते हुए भी, शम्बर उससे दूर हो गया था और इसने मयतनया की पीड़ा बहुत बढ़ा दी थी। यदि रावण उसकी छोटी बहन का पति नहीं होता तो वह शम्बर से उसे मृत्युदण्ड अवश्य दिलवाती।

इस प्रसंग के याद आने के बाद, मयतनया एक बार फिर बहुत बेचैन हो उठी। उसे लगने लगा जैसे उसके सीने में कहीं बहुत अधिक भारीपन है। वह उठी और टहलने लगी।

अचानक उसके पैर में किसी पत्थर से इतनी जोर से ठोकर लगी कि वह गिर पड़ी। मयतनया किसी तरह उठी और पीड़ा से कराहती हुई, पैर पकड़कर वहीं बैठ गयी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसे लगा, रावण उसके शान्त चलते जीवन में एक बड़ी ठोकर ही तो था।

एक बार आँखों में आँसू आये तो मयतनया को लगा, वह अपने दुर्भाग्य पर रो ले।

वह एक वृक्ष के तने से पीठ टिकाकर, सिर पीछे कर और हथेलियों से मुँह को ढककर खड़ी हो गयी। नेत्रों में भरा गीलापन रुका नहीं, आँसुओं के रूप में कपोलों पर लुढ़क पड़ा।

मयतनया ने हाथों की उँगलियों से आँसू पोंछे और फिर वह सचमुच रोने लगी। कुछ देर बाद शान्त हुई तो गला रुँध रहा था।

उसने गले पर हाथ फिराया और सामान्य होने का प्रयास करने लगी। उसे लग रहा था

कि वह इतना अधिक थक गयी है कि अब और नहीं चल पायेगी। बैठे-बैठे ही उसने अपने पैर सीधे किये तो लगा जैसे पैरों से दर्द निकल सा रहा है।

तभी महल के बाहर बहुत शोर सा सुनाई पड़ा। शम्बर युद्ध में गया हुआ था, अतः इस कोलाहल से उसका मन आशंकाओं से भर उठा। वह तीव्रता से महल के मुख्य-द्वार की ओर चल पड़ी।

बाहर शोकाकुल लोगों की एक बड़ी भीड़ थी। मयतनया को देखते ही शोर बहुत बढ़ गया। इस सबसे मयतनया के सीने की धड़कन बहुत अधिक बढ़ गयी। वह बहुत घबड़ा गयी थी।

'क्या हुआ?' उसने पूछा।

'राजमहिषी, हमारे महाराज वीरगति को प्राप्त हुए।' एक स्वर आया।

'क्या?' कहते हुये मयतनया को चक्कर आ गया। वह भूमि पर गिरने लगी तो कुछ स्त्रियों ने उसे सँभाल लिया।

* * *

शम्बर की चिता सजी हुई थी। शोकाकुल वैजयन्तपुर का समाज कुछ दूर पर जमा था। मयतनया ने सती होने का निश्चय किया था। शान्त और गम्भीर मयतनया महल से निकली। उसके पीछे-पीछे महल की स्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। अपने पिता मय के यहाँ बिताये दिन, शम्बर से विवाह, उसके बाद का समय और फिर रावण प्रकरण, सब कुछ उसके मस्तिष्क में आ रहा था। चलते-चलते वह कब उस शवदाह के स्थल तक पहुँच गयी, उसे पता ही नहीं चला।

मयतनया ने चिता पर लेटे हुये शम्बर के शरीर को देखा।

'सब कुछ समाप्त हो गया। मित्रता, शत्रुता, प्रेम और घृणा सब अर्थहीन हो गये हैं, उसने अपने आप से कहा, किन्तु तभी एकाएक उसके मन में उठा,

'और मन्दोदरी, उसका क्या? उसका जीवन तो अभी शुरू ही हुआ है।'

मयतनया का मन कचोट उठा।

'रावण के बिना मन्दोदरी का जीवन अंधकारमय ही बना रहेगा।' मयतनया को लगा, यद्यपि रावण का अपराध अक्षम्य था, किन्तु वह अपराध, उसके और शम्बर के प्रति किया हुआ अपराध था। शम्बर से बुरी तरह मार खाकर और लम्बे समय तक अन्धे कुए में कैद रह कर वह पर्याप्त दण्ड भी भुगत चुका था और फिर शम्बर का जीवन समाप्त हो चुका था और उसका शीघ्र ही समाप्त होने वाला था।

उसने अपने नेत्रों और अधरों को भींचा, हलके से सिर हिलाया और फिर नेत्र खोल दिये। उसके चेहरे से लगा जैसे उसने कोई निर्णय लिया है। उसने सामने कुछ दूर पर खड़े भृत्य को पास आने का संकेत किया। भृत्य आया तो मयतनया ने कहा,

'रावण को ले आओ।'

थोड़ी देर में रावण आ गया। गन्दा, मैले वस्त्र, दाढ़ी और बाल बेतरतीब बढ़े हुए, कान्तिहीन और श्रीहीन रावण को देखकर मयतनया को धक्का लगा, किन्तु उसके खड़े होने का ढंग बता रहा था कि वह अभी भी टूटा नहीं था। मयतनया ने उसे देखा और अपना मुख दूसरी ओर घुमा लिया, फिर कहा।

'इसे मुक्त कर दो।'

इसके साथ ही उसके मन में प्रश्न उठा कि कहीं वह कुछ अनुचित तो नहीं कर रही है।

इससे किसी की दुष्प्रवृत्तियों को बल तो नहीं मिलेगा, किन्तु इस प्रश्न के साथ ही उसकी आँखों के सामने छोटी बहन मन्दोदरी का चेहरा एक बार फिर घूम गया।

'मन्दोदरी के लिये उसे ऐसा करना ही था।' उसने सोचा। साथ ही उसे यह भी लगा कि कुछ देर पहले उसे सीने में जो भारीपन लगना शुरू हुआ था वह अब नहीं है।

'इतिहास इसका कुछ भी अर्थ लगाता रहे, मैंने अपनी मृत्यु से पूर्व एक बड़े बोझ से मुक्ति पा ली है,' उसने सोचा।

रावण को जब अन्धे कुएं से निकालकर यहाँ लाया जा रहा था और उसे पता लगा था कि शम्बर की मृत्यु हो गयी है तब उसे लगा था कि शायद उसे मृत्युदण्ड के लिये ले जाया जा रहा होगा, किन्तु अपनी मुक्ति का आदेश सुनकर वह चौंक पड़ा।

उसको इसकी स्वप्न में भी आशा नहीं थी, और वह रावण जो अपनी मृत्यु की आशंका से भी टूटा हुआ नहीं लग रहा था, मुक्ति की बात सुनते ही टूट गया।

युद्ध में जय-पराजय मिला करती है। रावण इसका आदी था, किन्तु आज मयतनया ने उसे क्षमा देकर ऐसी पराजय दी थी जो उसे कभी नहीं मिली थी। उसे लग रहा था जैसे मयतनया उसे पराजित करते हुए जीत की किसी दिव्य यात्रा की ओर बढ़ गयी है।

बन्धन से मुक्त होते ही रावण, मयतनया के सम्मुख झुक गया।

'देवि, एक दया और करें।' उसने मयतनया से कहा।

मयतनया ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसे देखा।

'कृपया अपने प्राण न दें।' रावण ने कहा।

मयतनया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह शम्बर की चिता की ओर बढ़ गयी।

'क्या मैं आपकी चरण-रज ले सकता हूँ?' रावण ने पूछा।

'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।' कहते हुए वह आगे बढ़ गयी।

रावण वहीं खड़ा रहा और जब मयतनया शम्बर की चिता के पास पहुँच गयी तो रावण ने आँखें बन्द कर लीं, उसे लगा वह आगे का दृश्य देख नहीं सकेगा।

रावण बहुत देर तक वहीं उसी प्रकार आँखें बन्द किये खड़ा रहा और तब खोलीं जब उसे लगा कि अब सब कुछ समाप्त हो चुका होगा। जिस स्थान पर खड़े होकर मयतनया ने उससे बात की थी, उस स्थान की मिट्टी लेकर उसने अपने मस्तक पर लगायी और धीमे कदमों और भारी मन से उस शवदाह-स्थल से निकल गया।

* * *

रावण की कैद का समाचार लंका में मन्दोदरी को मिल चुका था और इस समाचार से वह बहुत टूट गयी थी। मन्दोदरी जानती थी कि रावण के लिए इस तरह की घटना असामान्य नहीं थी, किन्तु वह उसकी सगी बड़ी बहन से ऐसा करेगा इसकी आशा उसे नहीं थी। उसे इस बात पर इतनी अधिक लज्जा महसूस हो रही थी कि उसे लग रहा था कि वह किसी को अपना मुँह न दिखाये।

कुछ दिन ऐसे ही बीते, फिर मन्दोदरी ने स्वयं को संभाला। शायद इतनी बड़ी घटना के बाद वह भविष्य में किसी स्त्री पर कुदृष्टि डालने से बचे। आखिर वह उसका पति था। मन्दोदरी ने रावण की मुक्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना, पूजा, व्रत आदि प्रारम्भ कर दिये, जो दिनों-दिन बढ़ते ही गये। इससे वह बहुत कृशकाय और कमजोर हो गयी थी।

और फिर एक दिन रावण उसके सम्मुख था। शर्मिन्दा और पश्चाताप से भरा हुआ। मन्दोदरी ने उसकी ओर देखा। बढ़ी हुई दाढ़ी, जटाओं जैसे बाल और वह स्वयं टूटा, थका और परास्त सा। जिस रावण का उसने वरण किया था, उस रावण और इस रावण में कितना अन्तर था। मन्दोदरी अपने उलाहने, क्रोध सब भूल गयी और रावण जब कुछ सामान्य हुआ तो मन्दोदरी ने पूछा,

'कैसे हो गया यह सब कुछ?'

'मेरी भूल थी।' रावण ने कहा और भरे हुए हृदय से सारी घटनायें बतायीं, कुछ भी नहीं छिपाया। कुछ दिनों तक रावण का व्यवहार बहुत अच्छा रहा; वह बहुत संयमित सा लगा किन्तु शीघ्र ही पुनः पहले जैसा हो गया।

* * *

इतना कहकर सीता रुकीं। राम इस सारे प्रकरण को सुनकर आश्चर्य चकित थे।

'किसने बतायी थीं ये बातें, क्या स्वयं मन्दोदरी ने?' उन्होंने पूछा।

'नहीं, सरमा ने।' सीता ने कहा।'

'किन्तु सरमा ने ये बातें तुम्हें बताकर क्या मन्दोदरी का विश्वास नहीं तोड़ा था?'

'नहीं, सरमा ने यह बातें मुझे उनके आदेश से ही बतलायी थीं। मन्दोदरी चाहती थीं कि मैं रावण की कमजोरियों से परिचित रहूँ, ताकि मेरे मन से उसके प्रति भय निकल जाये,' सीता ने कहा, फिर कुछ रुककर उन्होंने जोड़ा,

'मुझे लगता है मन्दोदरी अपना कर्तव्य समझकर जो कुछ करती रही हों, किन्तु उनके मन से रावण के प्रति श्रद्धा और प्रेम तो शायद समाप्त ही हो गये थे।'

फिर सीता ने आगे कहा।

* * *

रावण दण्डकारण्य से आपकी और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में धोखे का सहारा लेकर मुझे उठा ले गया था। वह मुझे अपने राजमहल में लेकर गया। अपना वैभव दिखाया। अपनी शूरवीरता और साम्राज्य का वर्णन किया और फिर अपनी रानी बनाने की बात मानने पर स्वयं मन्दोदरी समेत अपनी सभी रानियों को मेरी दासी बनाने की बात रख दी।

मन्दोदरी, उसका यह रूप देखकर आश्चर्य में डूब गई। उन्हें वह रावण याद आया, जिसने कहा था कि उसका प्यार सीमायें नहीं जानता और मन्दोदरी का इस पर सदैव एकाधिकार रहेगा... फिर वह रावण जो सब कुछ भूलकर नई-नई सुन्दर स्त्रियाँ बटोरता रहा।

मन्दोदरी को अपनी बहन की घटना भी याद आई, जिसके बाद उसने समझा था कि अब रावण सुधर गया होगा, किन्तु अब इस काण्ड ने मन्दोदरी की इस आशा को पूरी तरह नष्ट कर दिया।

सुपर्णखा-काण्ड के समय मन्दोदरी ने आपकी और मेरी चर्चा भी सुनी थी और रावण द्वारा आपसे और लक्ष्मण से सुपर्णखा का बदला लेने की बातें भी, किन्तु पुरुष से टकराने के स्थान पर स्त्री पर अत्याचार करने वाले रावण के प्रति वह वितृष्णा से भर उठी।

'एक अकेली स्त्री का छलपूर्वक अपहरण भी वीरता है क्या?' उसने रावण से पूछा।

'यह कूटनीति है,' रावण ने कहा।

'कैसी कूटनीति?'

‘अपनी स्त्री के खोने से वे बहुत व्याकुल होंगे और मानसिक रूप से टूटे हुए भी, फिर मैं आसानी से उन पर विजय प्राप्त कर सकूँगा।'

‘वे क्रोध में आकर विकराल भी तो हो सकते हैं।'

‘क्रोध में आया व्यक्ति गलतियाँ करता है; उनकी गलतियों से भी मुझे लाभ ही होगा।'

‘बिना क्रोध के भी व्यक्ति कभी-कभी बड़ी-बड़ी गलतियाँ करता है।'

‘क्या अर्थ है इसका?' रावण के स्वर में क्रोध झलक उठा।

‘मंै, अपनी बात कैसे कहूँ, आप क्रोध में लग रहे हैं।'

रावण खिसिया उठा। उसने अपने को संतुलित किया फिर कहा,

‘मैंने क्या गलती की है?'

‘आपको सीता का अपहरण नहीं करना चाहिए था। क्या आप राम के पराक्रम से परिचित नहीं हैं?'

‘तुम्हें मेरे पराक्रम पर सन्देह क्यों है?' रावण ने कहा।

रावण के इस कथन से मन्दोदरी के मन में उसका बहुत सी स्त्रियों को अपने अन्तःपुर में इकट्ठा करना और फिर अपनी बड़ी बहन से किया बलात्कार का प्रयास और फिर शम्बर से मार खाकर बहुत दिनों तक अन्धे कुएं में कैद रहना घूम गया।

वह व्यंग्य से मन ही मन हँसी, फिर कहा,

‘नहीं, मुझे आपके पराक्रम पर सन्देह नहीं है।'

मन्दोदरी के इस कथन और उसके स्वर में रावण को व्यंग्य का आभास तो हुआ, किन्तु यह निश्चित नहीं था, अतः वह कुछ बोला तो नहीं, किन्तु उसने क्रोध भरी नजरों से मन्दोदरी को देखा। मन्दोदरी ने रावण की क्रोध भरी नजरें देखीं, एक बार फिर मन में हँसीं और बोलीं -

‘सीता को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव; क्या वह भी आपकी कूटनीति ही है?'

‘यदि सीता ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो मैं यह बात राम तक पहुँचा दूँगा; वह इसे झेल नहीं पायेगा, टूट जायेगा, और मैं बहुत आसानी से उस पर विजय प्राप्त कर सकूँगा।'

‘क्या आपको लगता है सीता इसे स्वीकार करेगी?'

‘प्राणों का भय कुछ भी करवा सकता है, और यदि वह इसे स्वीकार नहीं करेगी तो भी मेरी कोई हानि नहीं है।'

‘और मुझे सीता की दासी बनाने का प्रस्ताव, वह क्या है?'

‘कुछ न कुछ प्रलोभन तो देना ही पड़ता है, किन्तु क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं है।'

‘मैंने जीवन भर आपको, आपकी बुद्धि, कौशल और पराक्रम को देखा है। मुझे आप पर विश्वास नहीं होगा तो किसे होगा?'

मन्दोदरी ने कहा, किन्तु इस बार उसकी व्यंग्य से भरी मुस्कराहट रावण से छिप नहीं सकी। वह क्रोधित होकर बोला-

‘मुझसे इस तरह की बात करने का साहस किसी में नहीं है मन्दोदरी!'

‘किन्तु आपको सलाह देने का अधिकार मुझे है।'

‘क्या सलाह है तुम्हारी?'

‘आप न राम के पराक्रम को समझ पा रहे हैं, न सीता के सतीत्व को। उन्हें सादर वापस कर दें, अन्यथा सम्पूर्ण राक्षस कुल का विनाश मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।' मन्दोदरी ने कहा।

‘भीरु स्त्री!' कहता हुआ, क्रोधित रावण वहाँ से पैर पटकता हुआ चला गया।

मन्दोदरी समझ गई कि रावण समझेगा नहीं। वह काल के वशीभूत हो चुका है। ‘पता नहीं भाग्य में और क्या-क्या है?' सोचते हुए वह भी वहाँ से हट गई।

* * *

रात्रि का लगभग एक प्रहर बीत चुका था। अंधकार गहरा चुका था और लगभग सारी लंका सो रही थी, किन्तु मन्दोदरी की आँखों में नींद नहीं थी। वह शैया पर करवटें बदलते-बदलते थक गयीं तो उठकर बैठ गयीं ‘मन्दोदरी मेरे बारे में ही सोच रही थीं' सीता ने राम को बताया।

‘बेचारी सीता' मन्दोदरी ने सोचा, ‘पता नहीं क्या कर रही होगी।' पास ही एक दासी सो रही थी। मन्दोदरी धीरे से उसके पास गई, उसका कन्धा पकड़कर हिलाया और बहुत धीमे स्वर में आवाज दी

‘सरमा'

‘सरमा' उसका नाम था। वह चौंककर उठ गई,

‘क्या हुआ? उसने पूछा।

मन्दोदरी ने होठों पर उँगली रखकर उसे धीरे बोलने का संकेत किया, फिर लगभग फुसफुसाकर कहा,

‘सीता को किस कक्ष में रखा गया है, जानती हो?'

‘ढूँढ़ लूँगी।'

‘मुझे उससे मिलना है।'

‘अच्छा।'

सरमा, मन्दोदरी के बहुत नजदीक थी और उसकी पीड़ा को समझ रही थी।

‘थोड़ी देर प्रतीक्षा करें, मैं सही स्थान का पता कर आती हूँ।'

‘ठीक है,' मन्दोदरी ने कहा।

सरमा उठकर गई और कुछ देर बाद ही वापस आकर मन्दोदरी से बोली,

‘आयें।'

मन्दोदरी मेरे पास आई। देखा, मैं भूमि पर बैठी, घुटनों पर सिर रखे रो रही थी। मन्दोदरी ने सरमा को जाने का संकेत किया और स्वयं मेरे पास भूमि पर ही बैठ कर पुकारा,

‘सीते!'

मैंने धीरे से सिर उठाया।

‘पुत्री।’ उन्होंने फिर कहा।

‘यहाँ रावण के महल में कोई मुझे पुत्री कहने वाला भी होगा, यह मैं सोच भी नहीं सकती थी। इस सम्बोधन से मैं अचम्भित होकर रह गयी थी।’ सीता ने कहा।

‘आप?'

‘मैं मन्दोदरी, रावण की पत्नी।'

‘क्या हुआ....?'

‘मैं तुमसे मिलना चाहती थी।'

उनसे, ‘क्यों' पूछने की मेरी हिम्मत नहीं हुई, किन्तु उन्होंने स्वयं ही कहा,

‘मैं तुम्हारी पीड़ा का अनुमान लगा सकती हूँ।'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, बस चुपचाप मन्दोदरी के चेहरे की ओर देखती रही।

‘मै तुम्हारी माँ जैसी हूँ।'

‘किन्तु वो...' मैंने कहा।

‘वह रावण।'

मुझे मन्दोदरी द्वारा रावण को इस तरह सम्बोधित किये जाने पर अचरज हुआ।

‘वह बहुत दुष्ट और पापी है।'

मन्दोदरी की बातों से मेरे आँसू कम हुए। कुछ सहारा सा लगा, किन्तु धोखा खाया हुआ मेरा मन अब भी आशंकित था। यह रावण की कोई चाल भी हो सकती है, मुझे लगा। मैं अभी भी कुछ नहीं बोली। मन्दोदरी ने इसे समझा।

‘मुझ पर विश्वास कर बेटी!' उन्होंने कहा।

अब मैंने मन्दोदरी का हाथ थामा और आर्त स्वर में कहा -

‘माँ, मुझे बचा लो।'

‘तुम्हें कुछ नहीं होगा, सीते; बस तुम हिम्मत बनाये रखना। टूटना मत।'

‘सच, माँ?'

‘हाँ सच!'

‘मैं एक ऐसी घटना बताती हूँ, जिससे तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि तुम्हें इस रावण से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

‘क्या?' मैंने कहा।

‘यह इतना पापी है कि इसने अपनी पुत्रवधू को भी नहीं छोड़ा।'

‘माँ, आप क्या कह रही हैं?'

‘मैं सच ही कह रही हूँ। रम्भा, इसके सौतेले भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर की पत्नी थी। उसके बहुत गिड़गिड़ाने पर भी इसने उससे बलात्कार किया।'

मैंने मन्दोदरी की इस बात पर बहुत आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखा।

‘पुत्री तुम्हें यह बात अविश्वसनीय लग रही होगी, किन्तु यह सचमुच ऐसा ही है।'

‘वह ऐसा कैसे कर सका माँ?' मैंने पूछा और फिर ‘बताती हूँ,' कहकर मन्दोदरी ने कहा,

‘इसके नाना सुमाली के बड़े भाई माल्यवान की पुत्री अनला की पुत्री कुम्भीनसी है। मधु नामक राक्षस उसका बलपूर्वक अपहरण कर ले गया था और उससे विवाह कर लिया। यह कुम्भीनसी के अपहरण की बात सुनकर क्रोध में आ गया और उसने सेना लेकर मधु पर आक्रमण कर दिया।

उस युद्ध में यह, मधु का वध करने ही वाला था कि कुम्भीनसी आ गयी। उसने रोते हुये इसके पैरों पर सिर रखकर स्वयं को विधवा न बनाने की प्रार्थना की। इसने मधु को जीवनदान दे दिया, किन्तु साथ ही शर्त रख दी कि मधु को देवताओं के साथ युद्ध में इसकी ओर से लड़ना होगा। मधु तैयार हो गया।

इसके बाद इसने कुबेर, जो कि इसका सौतेला भाई भी था और उसके लिये लंका का राज्य छोड़कर कैलाश पर्वत पर जा कर रहने लगा था, पर आक्रमण कर दिया और उसे हराने के

बाद विजय के मद में चूर इसने कुबेर, के पुत्र नलकूबर की पत्नी रम्भा को पकड़ लिया और उसे प्रताड़ित करते हुए उसके साथ बलात्कार किया।'

मन्दोदरी की इस बात से मुझे लगा जैसे मैंने कोई वीभत्स दृश्य देख लिया हो। बड़ी कठिनाई से मैंने कहा,

'फिर, माँ?'

'नलकूबर को जब पता लगा तो वह तिलमिला उठा। उसने इसे ललकारा। वह इसे मारना चाहता था।'

'काश ऐसा हो पाता,' मैंने कहना चाहा, किन्तु रावण, मन्दोदरी का पति है, उन्हें बुरा लग सकता है। यह सोचकर मैं रुक गई।

'फिर, क्या उनमें युद्ध हुआ?' मैंने पूछा।

'नहीं, रावण, उसके पिता का भाई है, यह सोच कर नलकूबर रुक गया, उसने इससे युद्ध नहीं किया, किन्तु इसे श्राप दे दिया कि यदि भविष्य में इसने किसी स्त्री के साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की तो इसके सिर के टुकड़े हो जायेंगे।

'सच!' मैं आश्चर्य और खुशी से भर उठी।

'हाँ, सच, और फिर तब से आज तक मैंने इसके द्वारा किसी बलात्कार की बात सुनी तो नहीं है।'

'ओह!' कहकर मैंने सन्तोष की साँस ली।

'और मुझे लगता है कि अब तुम्हारा अपहरण करके तो इसने सारे राक्षस कुल के विनाश को आमंत्रण दे दिया है। पता नहीं विधि के मन में क्या है।' मन्दोदरी ने कहा।

'इसके बाद भोर की आहट होने तक हम आपस में बातें करती रहीं। मन्दोदरी दु:ख, क्रोध और पश्चाताप से भरी हुई थीं। उन्होंने अपने, रावण से मिलने से लेकर आज तक की बहुत सी बातें मुझको बता डालीं,' सीता ने राम को बताया।

'रावण बुद्धिमान, किन्तु दुर्बुद्धि है। वह घमण्ड की अति से पीड़ित है।' मन्दोदरी ने कहा था।

'माँ, आप यहाँ कैसे रह लेती हैं?' मैंने प्रश्न किया।

'कैसे बताऊँ,' कहकर मन्दोदरी हल्के से हँसीं फिर कहा। 'जीवन में सामंजस्य तो बिठाना ही पड़ता है।'

इसके बाद कुछ पलों के लिये मौन रहा फिर,

'भोर होने वाली है, मैं चलती हूँ, किन्तु तुम घबड़ाना मत और धैर्य भी मत खोना,' कहते हुए वह जाने के लिये उठ खड़ी हुई, किन्तु अचानक जैसे कुछ याद आ गया हो, बोलीं-

'बेटी, सीते।'

'माँ,' मैंने कहा।

'जब भी राम से मिलना, उन्हें मेरा प्रणाम कहना। यदि कभी मुझे उनके दर्शन मिल सके तो मैं धन्य हो जाऊँगी। मुझे पता है वे मात्र मनुष्य नहीं हैं, परमात्मा का अंश हैं।'

'मन्दोदरी के इन शब्दों ने मुझे पता नहीं कहाँ पहुँचा दिया था। मेरा रावण की कैद से मुक्त होने का विश्वास, आपके पराक्रम पर विश्वास और साथ ही आप में देवत्व की अनुभूति, सभी कुछ मन्दोदरी के उन शब्दों में सिमटा हुआ था। मेरे आँसू सूख चुके थे और हृदय में आशा की

किरणें पैदा हो गयी थीं।' सीता ने बताया।

'माँ, क्या आप मुझे अपनी चरण-रज लेने देगीं?' मैंने कहा था।

'बेटी, ऐसा कहकर मुझे पाप में मत डालो। हो सके तो मुझे, राम की और अपनी चरण-रज लेने का अवसर देना,' कहते हुए मन्दोदरी ने मेरे सिर पर हाथ फेरा, अपने वस्त्रों से मेरे मुख पर आये आँसुओं को साफ किया, स्नेह दिया और फिर,

'चलती हूँ; देर हुई तो तुमसे, मिलने की बात फैल सकती है,' कहती हुई वे शीघ्रता से वहाँ से चली गयी थीं।

* * *

'सीता की स्मृतियों से यह सब कुछ कितना जुड़ा हुआ है। लोग कहते हैं, रावण नहीं होता तो राम, राम नहीं होते किन्तु यह राम वह राम नहीं होता तो क्या, सीता को यों खोना तो नहीं पड़ता।' राम ने मन ही मन कहा।

'जनकपुरी से लेकर सीता के प्रयाण तक मेरे जीवन के हर पृष्ठ पर 'सीता' ही तो लिखा है, फिर भी सीता के त्याग का आरोप लगाने वाले लोग, जिनमें सामने खड़े होने का साहस भी नहीं है, पीछे से मर्म पर प्रहार कर रहे हैं।

देश और समाज के लिए, परिवार और अपने हितों का बलिदान भी जिनके लिये आलोचना का विषय हो सकता है, कैसे हैं वे लोग! राम ने सोचा।

उन्हें ध्यान आया, मन्दोदरी के सम्बन्ध में इतना बताने के बाद सीता, कुछ देर के लिये रुक गई थीं, फिर-

'रावण जितना भी विद्वान रहा हो किन्तु उसके लिये स्त्री मात्र भोग्या थी। उसने अपने अन्तःपुर में सैकड़ों स्त्रियों को भर रखा था, इसके बाद भी मन्दोदरी की बड़ी बहन मायावती और अपनी पुत्रवधू सी रम्भा से भी बलात्कार किया और फिर किसी व्यक्ति से बदला लेने के लिये छलपूर्वक उसकी स्त्री का अपहरण किया।

उसका घमण्ड आसमान छू रहा था। मन्दोदरी राजमहिषी थी, उसे अपहरण करके लायी हुई एक स्त्री की दासी बनाने के प्रस्ताव ने उसके हृदय में शूल सा चुभो दिया था। अतः मन्दोदरी के मन में उसके लिये श्रद्धा और प्रेम के स्थान पर क्रोध और घृणा के भाव उत्पन्न हो गये हों तो आश्चर्य है क्या, भले वह व्यक्ति उसका पति ही क्यों न हो।

'आपको याद है, जब लंका विजय के बाद आपने वहाँ का साम्राज्य विभीषण को दे दिया था, तब विभीषण आपको, लक्ष्मण को और मुझे बहुत आग्रह पूर्वक लंका के राजमहल में ले गये थे,' सीता ने कहा था।

'हाँ, और फिर मन्दोदरी ने तुम्हें अपने पास अन्तःपुर में बुला लिया था!' राम ने कहा।

'हाँ, तब वह बहुत देर तक मुझसे अपने दुर्भाग्य पर बातें करती रही थीं।'

'क्या?'

'बहुत सी बातें कीं। वे कह रही थीं, मेरे सीने में पता नहीं क्या-क्या भरा था, किससे कहती, सीता ने बताया।

'वे तो यह भी कह रही थीं कि 'सीते, बेटी मैं तुमसे पता नहीं क्या-क्या कह बैठी, क्योंकि मैं जानती हूँ कि तुम देवी सरीखी हो, तुम्हारे अन्दर छल कपट नहीं है और तुम मुझे समझ सकती हो।'

‘तुम्हारे नेत्र संसार के सबसे सुन्दर नेत्र हैं,' उन्होंने कहा था।

‘क्यों माँ?' मैंने पूछा तो उन्होंने कहा,

तुम्हारे इन नेत्रों ने तेरह महीनों तक अनवरत राम की राह देखी है।'

उनकी इस बात पर मैंने सिर झुका लिया तो उन्होंने कहा था,

‘मेरी ओर देखो सीते, मैं जीवन में दुबारा पता नहीं इन नेत्रों को देख पाऊँगी या नहीं।

मन्दोदरी को याद कर, सीता तो भावुक हो ही रही थीं, उनसे इस बात को सुनकर राम भी भावुक हो उठे, बोले-

‘मुझे लगता है इतना अकेलापन वे रावण की मृत्यु के बाद से ही नहीं, बहुत पहले से महसूस कर रहीं थीं।'

‘हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है।' इतना कहकर सीता चुप हो गयीं, किन्तु कुछ देर बाद बोलीं

‘वे आपसे मिलकर आपके चरण-स्पर्श भी करना चाहती थीं।' यह सुनकर राम संकोच से गड़ से गये।

‘क्यों?' उन्होंने पूछा।

‘वे आपको साधारण व्यक्ति नहीं, ईश्वर का अंश समझती हैं, किन्तु महलों की मर्यादा और संकोच के कारण आपके सामने आने का साहस नहीं जुटा सकीं।'

‘ओह।' राम ने कहा।

* * *

लंका में युद्ध चलते कई दिन बीत गये थे। पहले कुम्भकर्ण और फिर मेघनाद मारा गया था। मेघनाद के, युद्ध में मारे जाने के समाचार ने लंका को शोक में डुबो दिया था। उसकी पत्नी सुलोचना ने सती होने का निश्चय किया था। मन्दोदरी इस युद्ध से पहले ही बहुत आहत थीं, फिर इस पुत्र शोक ने उन्हें बहुत व्याकुल कर दिया और फिर सुलोचना के सती होने के निश्चय का यह समाचार। वे बेहाल थीं। उन्होंने सरमा को बुला भेजा। वह मन्दोदरी की विश्वासपात्र भी थी और समझदार भी। सरमा आई तो मन्दोदरी ने उससे कहा,

‘सरमा, मैं सुन रही हूँ, सुलोचना ने सती होने का निश्चय किया हैं?’

‘जी महारानी।'

‘सरमा, मेघनाद मेरा पुत्र था, फिर भी एक शव के साथ किसी स्त्री का इस तरह आग में जलकर मर जाना, मुझे बहुत ही अमानवीय लग रहा है।'

‘वह अमानवीय ही है।'

‘कितना वीभत्स और कारुणिक दृश्य होगा वह।'

‘बहुत, किन्तु यह सुलोचना का निश्चय है।'

‘सरमा, मुझे लगता है कि मैं सुलोचना को समझाऊँ।'

‘क्या आपको लगता है इससे कुछ लाभ होगा?'

‘शायद नहीं।'

‘मुझे भी ऐसा ही लगता है, और.....,’

‘और क्या, सरमा?'

‘मुझे लगता है आप के द्वारा इस तरह का प्रयास, शायद आपके प्रति अच्छा सन्देश नहीं

देगा।'

'ठीक कह रही हो, किन्तु मैं इसकी परवाह नहीं करती; यदि मुझे आशा होती कि सुलोचना मेरी बात समझेगी,' मन्दोदरी ने कहा।

* * *

सुलोचना सती हो गयी थी। मेघनाद के वध के कारण रावण के अनुरोध पर युद्ध रुका हुआ था। रावण बहुत दुखी था और उतना ही क्रोधित भी। मन्दोदरी उसके पास गयीं। वे रावण को एक बार फिर समझाना चाहती थीं, किन्तु रावण इतनी अधिक उत्तेजना में था कि मन्दोदरी को देखते ही बोला,

'मन्दोदरी तुम देखना, शीघ्र ही वह राम मेरे कोप का शिकार होगा।'

'इस राक्षस कुल में आप ही बचे हैं। राम से सीधे युद्ध का खतरा उठाने से पूर्व क्या आप अपने निर्णय पर पुनर्विचार नहीं कर सकते?' मन्दोदरी ने कहा।

'रावण, खतरों से डरकर अपने निर्णय नहीं बदला करता।'

'लोग कहते हैं, वे साधारण मानव नहीं हैं, ईश्वर का अवतार हैं।'

'लोग कुछ भी कहा करते हैं। ईश्वर पत्नी के लिये यूँ जगह-जगह भटका करता है क्या?'

रावण की इस बात ने मन्दोदरी को बहुत अधिक आहत किया।

सीता व अन्य लोगों से मन्दोदरी ने राम के बारे में जो कुछ सुना था उससे उनके मन में राम के लिये बहुत अधिक आदर की भावना उत्पन्न हो गई थी। विशेष रूप से रावण के जिस रूप को उन्होंने देखा था, उसके बाद राम के एक-पत्नी व्रत ने उन्हें राम के प्रति श्रद्धा से भर दिया था।

मन्दोदरी के आहत मन को, रावण का उसको सीता की दासी बनाने का प्रस्ताव भी मथ रहा था। मन की कड़वाहट वाणी में उतर आई।

'नहीं, ईश्वर तो शायद किसी भी नयी स्त्री के लिये पत्नी को राजमहिषी से दासी बनाता रहता होगा।' मन्दोदरी ने बहुत धीमे स्वर में कहा। रावण ने इसे सुन लिया, किन्तु उत्तर नहीं दिया।

'जब तक दिन है तब तक व्यक्ति को नहीं लगता कि रात भी आयेगी और उसके बाद सो जाना ही नियति होगी,' उसने कहा।

'तुम कहना क्या चाहती हो मन्दोदरी?' रावण का स्वर सख्त हो गया।

'केवल यही कि व्यक्ति का घमण्ड उसे सोच-समझकर पग उठाने का अवसर नहीं देता।'

'मन्दोदरी' रावण ने लगभग चींख कर कहा।

'मत भूलो, तुम राजमहिषी मेरी अनुकम्पा से ही हो।'

'भूलना चाह कर भी कहाँ भुला पा रही हूँ!' कहते हुए मन्दोदरी के नेत्र छलक उठे।

'किन्तु अभी तो मैं राजमहिषी आपकी नहीं, सीता की अनुकम्पा से हूँ; यदि वह आपके प्रस्ताव पर सहमत हो गयी होती तो इस समय वही राजमहिषी होती और मैं उसकी दासी...' मन्दोदरी ने थोड़ा रुककर कहा और अपनी दृष्टि रावण के चेहरे पर गड़ा दी।

मन्दोदरी का कथन ही नहीं, दृष्टि भी रावण को चुभ गयी। उसने अत्यधिक क्रोध के साथ उनकी ओर देखा और 'मूर्ख और शंकालु स्त्री' कहता हुआ वहाँ से हट गया।

उसके जाने के बाद बहुत देर तक मन्दोदरी सिसकती हुई बैठी रहीं, फिर अपने आँसू साफ किये और रावण का व्यवहार याद करने लगीं।

इसने सारा जीवन स्त्रियों को भोग की वस्तु ही समझा। सुन्दर स्त्रियों से अपना महल भर लेने के बाद भी इसकी तृष्णा शान्त नहीं हुई।

न मेरी बड़ी बहन मयतनया ही बच पाई और न पुत्रवधू जैसी, भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर की पत्नी रम्भा। सजायें भी भुगती किन्तु सुधरा नहीं।

रावण का व्यवहार याद कर मन्दोदरी को अपने ऊपर ही हँसी आ गयी। वह भी किसे समझाने का प्रयास कर रही थीं। रावण ने आज तक कब किसी की बात मानी है? उन्हें याद आया कि रावण की बहन सुपर्णखा भी कितनी स्वच्छन्द थी।

एक बार जब मन्दोदरी ने उसके छुप-छुपकर एक दानव युवक विद्युज्जिह्व से मिलने की सूचना रावण को दी और उससे इस पर सुपर्णखा को समझाने की बात की थी, तब भी रावण ने उसकी बात को महत्व नहीं दिया था।

वैसे, शायद मन्दोदरी को भी विद्युज्जिह्व से सुपर्णखा के मिलने पर आपत्ति न होती, किन्तु उस दानव कुमार की माँ विज्जला जो कि मन्दोदरी की मौसेरी बहन भी थी, ने किसी के प्रेम में पड़कर अपने पति दानव मुचकुन्द का निर्ममतापूर्वक वध कर रास्ते पर डाल दिया था। इस पर कुपित होकर विद्युज्जिह्व ने भी अपनी माँ विज्जला को अत्यन्त निर्ममतापूर्वक पत्थर पर पटक-पटककर मार डाला था।

विद्युज्जिह्व की इस पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण भी मन्दोदरी इस सम्बन्ध के विरुद्ध थीं। रावण के इस सम्बन्ध में ध्यान न देने का परिणाम यह हुआ कि अन्त में एक दिन सचमुच सुपर्णखा उस दानव कुमार के साथ भाग गयी।

इसके बाद रावण ने कुपित होकर विद्युज्जिह्व को दण्ड देने के लिये सेना सहित उस पर चढ़ाई कर दी। विद्युज्जिह्व मारा गया और सुपर्णखा विधवा हो गयी।

उसका रुदन देखकर रावण को बहुत दया आयी। रावण ने उसे दण्डकारण्य का क्षेत्र दे दिया और उसके पति की ओर के सभी कालिकेय दानवों को भी रावण की रक्ष-संस्कृति स्वीकार करने पर दण्डकारण्य में बसने की अनुमति दे दी, किन्तु इस सब के बाद भी रावण ने मन्दोदरी की सीख के अनुसार संयमित व्यवहार करने की कोई बात सुपर्णखा को नहीं समझाई और इसका परिणाम उसका राम और लक्ष्मण से प्रणय निवेदन, फिर अपमान महसूस करना और फिर बाद में सीता अपहरण जैसे रूपों में सामने आया।

मन्दोदरी सोचने लगीं, मैंने सब कुछ मौन रहकर और अपना भाग्य समझकर सहा और इन घटनाओं से इसके प्रति मन में प्रेम और सम्मान घटने पर भी मैंने इसे कभी भी अपने व्यवहार में परिलक्षित नहीं होने दिया, किन्तु किसी व्यक्ति से बदला लेने के लिये उसकी स्त्री का धोखे से अपहरण; फिर मुझे उसकी दासी बनाने का प्रस्ताव भी क्या सहन करने योग्य था? जिस राज्य में मैं राजमहिषी बनकर रही हूँ, उसी राज्य में दासी। मन्दोदरी को लगा जैसे उसके सीने में कहीं बहुत बड़ी पीड़ा उभरी है।

'मैं रोऊँगी नहीं, परिस्थितियों का सामना करूँगी।' कहते हुए मन्दोदरी सिर झटककर खड़ी हो गयीं। उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें रावण को उसके प्रयास में हतोत्साहित करना है और सीता को टूटने नहीं देना है।

'मय दानव की यह कन्या राजमहिषी है और राजमहिषी ही रहेगी।' मन्दोदरी ने स्वयं से कहा।

कण्टकों की राह पर,
चलता रहा मन,
घाव भी होते रहे,
पर दर्द से लड़ता रहा मन,
और खुद को तो
संभाला भी बहुत,
किन्तु लो, विद्रोह,
फिर भी उभर आया

* * *

सीता ने बात समाप्त की और राम की ओर देखा। वे बहुत ही गम्भीरता से सब कुछ सुन रहे थे। सीता की बात समाप्त होने पर उन्होंने कहा-

'ओह! रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी ने क्यों विभीषण की राजमहिषी होना स्वीकार कर लिया, यह बहुत कुछ स्पष्ट है।

9. नदी का किनारा और वे

वीणा बजाना, शाम को सरयू के तट पर बैठ कर नदी के प्रवाह को देखना या फिर नदी के किनारे टहलना राम को प्रिय था। जिस दिन भी शाम को समय मिलता वे सरयू के तट पर पहुँच जाते। बहुधा सीता भी उनके साथ हुआ करती थीं।

राम और सीता का रथ सरयू के किनारे रुका। वे उतरे। सारथी को वहीं रुकने का संकेत कर नदी की ओर बढ़ गये। तट पर पहुँचकर सीता ने झुक कर नदी का जल अपनी दाहिनी अँजुली में भरा और राम की ओर उछाल दिया। राम के मुख पर पानी की बूँदें पड़ीं। वे हँस पड़े। चेहरे पर पड़ी बूँदें पोंछते हुये बोले,

'बचपना अभी गया नहीं है?'

'क्यों जाये?' सीता ने हँसते हुये कहा।

'हाँ यह भी ठीक है, क्यों जाये?' कहते हुये राम भी हँस पड़े और उन्होंने भी सीता पर डालने के लिये नदी के जल से अपनी अँजुली भर ली। सीता ने हँसते हुए राम का हाथ पकड़कर वह पानी गिरा दिया, फिर वे वहीं नदी के पास ही बैठ गये।

राम की दृष्टि नदी के प्रवाह पर थी। सीता ने इसे देखा और पूछा,

'क्या देख रहे हैं?'

'कुछ नहीं, सीते, बस ऐसे ही मन में आया कि बहुत बचपन से ही मैं इस नदी को देखता आ रहा हूँ, तब से अब तक पता नहीं कितना पानी बह गया होगा, किन्तु नदी आज भी वही है।'

'आप बहुत जल्दी दार्शनिक होने लगते हैं। मझे दार्शनिक नहीं बनना,' कहकर सीता नदी के किनारे -किनारे कुछ दूर चली गयीं। राम वहीं खड़े रह गये। कुछ दूर जाने के बाद सीता ने मुड़कर देखा। राम उनकी ओर नहीं, नदी की ओर ही देख रहे थे। सीता को शरारत सूझी। वे एक बड़े वृक्ष की आड़ में खड़ी होकर राम को देखने लगीं।

कुछ देर बाद राम का ध्यान टूटा तो उन्होंने देखा सीता कहीं दिखाई नहीं दे रहीं हैं। वे उन्हें ढूँढ़ने लगे, कुछ देर बाद वे व्यग्र हो उठे। उन्होंने आवाज दी,

'सीते।'

राम की व्यग्रता देखकर सीता को हँसी आ गयी। वे पेड़ की ओट से बाहर आ गयीं।

'कहाँ छुप गई थीं तुम, मैं डर सा गया था।' राम ने कहा।

'डर क्यों गये, यहीं तो थी मैं।'

'एक बार खोयी थीं तुम, तो तेरह महीने बाद मिलीं और वह भी बड़ी कठिनाई से। अब दुबारा मैं तुम्हें एक पल के लिये भी नहीं खोना चाहता।'

'हाँ?' सीता ने कहा, 'अच्छा एक बात बताइये।'

'क्या?'

'जब आप स्वर्ण-मृग के शिकार से वापस आये और मैं नहीं मिली तब क्या सोचा था

आपने?'

'मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। पहले तो मैंने सोचा कि हो सकता है तुम किसी कार्यवश यहीं कहीं आस-पास गयी होगी, किन्तु शीघ्र ही मुझे लगने लगा कि तुम अवश्य ही किसी संकट में हो।'

'हम वहाँ बहुत दिनों से रह रहे थे, फिर

थोड़ी देर मैं नहीं दिखी तो आपके मन में मेरे संकट में होने की बात आई, कुछ और नहीं, क्यों?'

'यह तो मैं नहीं बता सकता, किन्तु तुम्हारे न मिलने से मन में कुछ घबराहट अवश्य पैदा हो गयी थी।''

'हमारे मन एक हैं न।' सीता ने कहा। उनके चेहरे पर हलकी सी मुस्कराहट और लज्जा के भाव थे। कुछ रुककर वे बोलीं

'शायद यही हमें जोड़ता है।'

राम हँस पड़े, बोले-

'कुछ भी जोड़ता हो, पर हम हैं तो एक ही।'

सीता के चेहरे पर हल्की सी लाली दौड़ गयी, वे बोलीं,

'अच्छा मैं नहीं मिली, फिर?'

'फिर हमने तुम्हें ढूँढ़ना शुरू किया; तुम्हारे न मिलने से हम बहुत परेशान हो गये थे, किन्तु जटायु से मिलने के बाद तो सब कुछ स्पष्ट ही हो गया था।'

'फिर?'

'मुझे लगा कि जैसे लक्ष्मण और मेरे नेत्रों में खून उतर आया हो।'

'ओह!' कहकर सीता ने राम का हाथ पकड़कर अपने हाथों में लेकर दबाया और फिर ऐसे अपने माथे से लगा लिया, जैसे कोई अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हो।

कुछ देर तक शान्ति रही, फिर सीता ने खामोशी तोड़ी,

'एक बात और पूछूँ?'

'क्या?'

'लोग कहते हैं आपने बालि को छल से मारा था।'

'बालि दुष्ट, रावण का मित्र और उस क्षेत्र में रावण के हितों का रक्षक भी था। उसका वध रावण के विनाश की ओर पहला कदम था।'

'किन्तु वह छल से मारने वाली बात...' सीता ने कहा।

'बात जब दुष्टता से लड़ने की हो तब यह विचारणीय होता है क्या?'

सीता इस पर मौन हो गई। प्रतिवाद करने लायक कुछ भी नहीं लगा। कुछ देर बाद बोलीं,

'नदी के पास चलें?'

'आओ।' कहकर राम उठ खड़े हुये। सीता उठीं और कुछ दूरी पर लगे पौधे से कुछ फूल तोड़कर अपने आँचल में ले आयीं फिर वे नदी तक गये और टखनों तक पानी में चलकर खड़े हो गये।

सीता थोड़े-थोड़े फूल हाथ में लेकर सरयू में डालने लगीं। दोनों, बच्चों की भाँति पानी में

फूलों का बहना देख रहे थे। सारे फूल पानी में प्रवाहित करने के बाद सीता ने आँचल झाड़ा और हँस कर बोलीं,

'समाप्त।'

'क्या?'

'मेरे आँचल के फूल।'

'तुम्हारा आँचल फूलों से कभी खाली नहीं होगा, सीते।'

'हाँ, मेरे आँचल में आप जो हैं,' कहकर सीता फिर हँस दीं। उनकी इस बात पर राम भी हँस पड़े फिर बोले-

'सीते, तुम कहती हो कि तुम धरती की बेटी हो।'

'हाँ, बचपन से मैंने यही सुना है।'

'और मुझे कभी-कभी लगता है कि इस सरयू का जल पीकर बड़ा होने वाला मैं, सरयू का बेटा हूँ।' राम ने कहा।

'सीते मुझे लगता है, जैसे यह नदी तुम्हारे आँचल के फूल लेकर आगे बढ़ गई है, वैसे ही..... राम ने फिर कहा।

'वैसे ही क्या?'

'तुम्हारे आँचल से सदैव फूल झरते रहें और उन्हें समेटता मेरा जीवन नदी के प्रवाह जैसा बहता रहे।'

'मुझे क्या लगता है, बताऊँ?' सीता ने कहा।

'हाँ सीते बोलो, मैं सुनना चाहता हूँ।'

'मुझे आप इस आसमान सरीखे लगते हैं, जिसके विराट होने की कोई सीमा नहीं है, और ....'

'और?'

'और, इस आसमान की छाया तले फूल खिलते रहें और इस धरती की बेटी का आँचल हमेशा उनसे भरा रहे...' सीता ने कहा, फिर कुछ देर बाद चंचलता भरे स्वर में बोलीं,

'हम कोई गीत लिख रहे हैं क्या?'

राम हँस पड़े, बोले,

'नहीं, शायद हम गीत जी रहे हैं।

'अच्छा, कैसे?' सीता ने पूछा

'ध्यान देना सीते, क्या ऐसा नहीं लग रहा कि हमारी भावनाएं भी साँस ले रही हैं, सौन्दर्य की अनुभूति आँखों से उतरकर हृदय तक जा पहुँची हैं और हमारी बातों में कलात्मकता का पुट है, तो सब मिलाकर यह एक गीत ही तो हुआ।'

'हाँ हुआ।' कहते हुए सीता राम का हाथ थाम कर हँस पड़ीं।

'मेरा गीत तुम्हें अच्छा लगा?' राम ने पूछा।

'बहुत', कहते हुए सीता ने राम की उँगलियाँ अपनी आँखों से लगा लीं और एक बार फिर कहा-

'बहुत-बहुत अच्छा लगा मुझे यह गीत।'

'सीता, मुझे लगता है, कि कोई खूबसूरत गीत, यदि शरीर धारण करता तो वह तुम

जैसा ही होता।'

सीता हँस पड़ीं। राम ने आसमान की ओर उँगली उठाई और फिर बोले-

'मुझे लग रहा है, ये आसमान और ये धरती हमारे लिए आशीषों से भर गये हैं।'

'हमारा सौभाग्य है।' सीता ने कहा।

राम ने सीता का हाथ थामा, बोले-

'वापस चलें?'

'नहीं, कुछ देर और यहीं किनारे पर बैठते हैं। वीणा लाये हैं न?' सीता ने कहा।

'हाँ, रथ पर होगी।'

'कुछ देर बजायेंगे नहीं?'

'ठीक है।' कहकर राम उठे और दूर खड़े सारथी को संकेत किया। वह निकट आया तो राम ने उससे वीणा लाने के लिये कहा। वीणा आयी तो राम उसे लेकर नदी के किनारे बैठ गये।

सीता भी पास आकर बैठ गयी थीं। वे कितनी देर तक वीणा के सुरों में खोये रहे, पता ही नहीं चला, किन्तु जब अँधेरा घिरने लगा तो सीता ने स्वयं ही राम से कहा,

'चलिये चलें।'

जब तक वे राजमहल पहुँचे, शाम ढल चुकी थी और दिये जल चुके थे। महल में उनकी प्रतीक्षा हो रही थी।

'हमें लौटने में देर हो गई है।' सीता ने कहा।

'हाँ, हमारी बातें कुछ अधिक ही लम्बी हो गई थीं।'

'किन्तु अच्छा बहुत लगा। समय मिला तो कल फिर चलेंगे।' सीता ने कहा।

'ठीक है।' राम ने कहा और फिर दोनों अपने-अपने नित्य के कार्यों में व्यस्त हो गये।

* * *

दूसरे दिन शाम होते ही सीता, राम के पास आई।

'चलेंगे?' उन्होंने हँसकर पूछा। राम को लगा वे अधरों से ही नहीं, आँखों से भी हँस रही हैं।

'चलना है?' उन्होंने कहा।

'हाँ, यदि आपके पास समय हो तो।'

'आज फिर कुछ पूछना है क्या?'

इस बात पर वे कुछ शरमा गईं।

'ऐसा कैसे समझा आपने?' उन्होंने कहा।

'तुम्हारी आँखों में लिखा था, पढ़ लिया।'

सीता हँस पड़ीं, बोलीं-

'फिर, हम चल रहे हैं न?'

'हाँ,' कहकर राम आगे बढ़े।

'वीणा नहीं लेंगे?'

'ले लो।'

सीता ने एक परिचारिका से राम की वीणा मँगवाई और उसे लेकर वे राम के साथ हो लीं। महल से बाहर आये। रथ लगभग तैयार ही था। वे रथ में बैठे और नदी के पास तक आकर

उतर पड़े। रथ को छोड़ा और पैदल ही तट की ओर चल पड़े।

'टहलना है या कहीं बैठें?' राम ने पूछा।

'टहलते हैं।'

'ठीक है।'

कुछ देर तक टहलने के बाद सीता ने मौन तोड़ा,

'कल मैंने आपसे एक प्रश्न किया था!'

'हाँ, तुमने पूछा था कि स्वर्ण-मृग के वध के बाद लौटकर तुम्हें न पाकर मुझे क्या लगा था।'

'कुछ प्रश्न और भी हैं मेरे मन में।'

'क्या?'

'मेरे हरण के बाद, आपको सहयोगियों की कितनी अधिक आवश्यकता रही होगी; पहले मेरा पता लगाने के लिये भी, और फिर रावण से युद्ध करने के लिये।'

'हाँ, सहयोगियों की आवश्यकता तो थी, और ईश्वर ने उनकी कमी रहने भी नहीं दी। जटायु, हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त, और फिर विभीषण..., ईश्वर ने कितने ही सहायक स्वतः भेज दिये।'

'ईश्वर को धन्यवाद देना उचित ही है; सब कुछ उसकी कृपा से ही होता है, किन्तु आप यहाँ अयोध्या या मिथिला से भी तो सहायता माँग सकते थे।

'हाँ सीते, कुछ देर के लिये मेरे मन में यह बात आई थी, फिर मैंने यह विचार त्याग दिया।'

'क्यों?'

'सीते, सोचो कि तुम्हारा पता लगे बिना यदि यह बात अयोध्या या मिथिला के जन-साधारण तक पहुँच जाती तो पता नहीं कैसी-कैसी प्रतिक्रियायें होतीं।' राम ने कहा।

'पर पता लगने के बाद...' सीता ने प्रश्न किया।

'लक्ष्मण मेरे साथ थे और हमें अपने बाहुबल पर विश्वास था।'

कुछ रुककर राम ने कहा,

'और तुम्हें?'

'क्या?'

'तुम्हें मेरे बाहुबल पर विश्वास नहीं है क्या?'

सीता ने राम की बाँह पकड़कर सिर उनकी भुजा से टिका दिया,

'बहुत, बहुत अधिक, और अखण्ड विश्वास है।'

'सीते, तुम्हारे राम ने आज तक किसी से कुछ माँगा नहीं है।'

'जानती हूँ।' सीता ने कहा।

'और दूसरों की तरह ही सुख और दुःख मेरी राह में भी आते रहे हैं, किन्तु उन्होंने आज तक मुझे विचलित नहीं किया है।'

सीता क्या बोलतीं, वे राम के मुख की ओर कुछ देर तक देखती रहीं, फिर नेत्र बन्द कर लिये। कुछ देर बाद राम ने पुकारा।

'सीते!'

‘हाँ,' सीता ने नेत्र खोले।

‘क्या सोच रही हो?'

‘सोच रही हूँ, आपको पाने का सौभाग्य कितना बड़ा है, और मेरा आँचल कितना छोटा।'

‘तुम्हें मुझसे बहुत प्रेम है न सीते।’

‘आपको क्या लगता है।'

‘वही जो तुम्हें लगता है।’

‘फिर क्यों पूछ रहे हैं?'

‘इसलिये क्योंकि तभी तो तुम ऐसा कह रही हो, अन्यथा मैं नहीं समझता कि मुझे पाना कोई बहुत बड़ा सौभाग्य है; और तुम्हारा आँचल छोटा नहीं बहुत बड़ा है, सीते।'

‘अच्छा, कितना बड़ा है मेरा आँचल?'

राम ने आसमान की ओर दृष्टि उठाई, बोले, ‘ये सारा आसमान तुम्हारे आँचल में समा सकता है।'

‘हूँ...!' कहकर सीता हँस पड़ीं।

‘एक बात कहने का मन कर रहा है सीते।'

‘क्या?'

‘मुझे लगता है सौन्दर्य ईश्वर की संगीतमय सृष्टि है और परिभाषाओं से ऊपर है।'

‘हाँ, और देखो न, सोती आँखों के सपनों पर तो किसी का बस नहीं है, पर जागती आँखों के सपने तो सुन्दर होने ही चाहिएं।'

राम की इस बात पर सीता कुछ मुस्करायीं, फिर अधरों को थोड़ा सा दबाया और आँखों को चौड़ा करते हुए सिर को हिलाकर एक लम्बा सा ‘हूँऽऽ...,' किया, और कहा,

‘मुझे लगता है, आपकी जागती आँखों में भी कोई सपना बसा हुआ है।'

‘हाँ, है न; मेरी आँखों में भी एक बहुत बहुत सुन्दर सा सपना...'

‘अच्छा! क्या है आपकी जागती आँखों का सपना?' सीता ने हँसते हुए कुछ चंचलता से कहा।

राम भी हँस पड़े, बोले,

‘तुम और बस तुम!’

सीता एक बार फिर हँस पड़ीं, बोलीं,

‘मेरा सौभाग्य।' और फिर उन्होंने इस प्रकार नेत्र बन्द कर लिये जैसे वो इतना कुछ पा गयी हैं कि अब कुछ और पाना शेष नहीं हैं।

और फिर बहुत देर तक वे वीणा के सुरों में डूबे रहे।

10. एक और दीपावली

दिन नहीं रुकते। दीपावली फिर आ गई थी। राम, सीता और लक्ष्मण के वनवास से लौटने की एक और वर्ष-गाँठ। हर वर्ष इस दिन घरों में शाम को लक्ष्मी-गणेश के पूजन के बाद दीपों की कतारें सज जाती थीं। लोग कई दिनों तक उत्सव मनाते थे।

दीपावली फिर आ तो गई थी, किन्तु सीता नहीं थीं, उत्सव भी नहीं थे और सारी अयोध्या ही मानो उदास थी।

मानस और चित्रा भी पूजन सम्पन्न कर चुके थे, किन्तु वे कुछ बेचैन से थे। मानस घर से बाहर निकलकर खड़ा हो गया था। कुछ ही देर में चित्रा भी बाहर आ गयी और दोनों बस यूँ ही इधर-उधर टहलने लगे। थोड़ी देर बाद चित्रा ने कहा,

'मेरा मन कह रहा है हम उस स्थान पर चलें, जहाँ तक माँ के चरणों के निशान मिले थे।'

'मैं भी यही सोच रहा था, आओ!' मानस ने कहा।

'शाम हो रही है, लौटने में अँधेरा हो जायेगा। हम मार्ग में प्रकाश के लिये कुछ ले लें?' चित्रा ने कहा।

'हाँ।'

मानस और चित्रा चले तो कुछ देर बाद ही अँधेरा घिरने लगा। उन्होंने अपने साथ लाये दीपक को ओट में कर जलाया और उसके प्रकाश में आगे बढ़ने लगे। हवा से दीपक बुझने न पाये इसके लिये उन्हें विशेष प्रयास करना पड़ रहा था।

जंगल का रास्ता था और मार्ग में जगह-जगह ठोकरें थीं, काँटें थे और जानवरों की आवाजें थी, किन्तु न उनका धैर्य टूटा और न उन्हें भय ही लगा। उन्हें लग रहा था जैसे वे किसी अज्ञात प्रेरणा से बँधे चले जा रहे हैं।

कुछ देर बाद वे पेड़ों के उस कुंज तक पहुँच गये जहाँ तक प्रयाण के पूर्व सीता के पैरों के चिन्ह पाये गये थे।

लोग, उस स्थान को और वहाँ तक जाने के मार्ग को विकसित कर, सीता जी की मूर्ति स्थापित कर वहाँ उनका मन्दिर बनाना चाहते थे। यह प्रस्ताव जब राम तक पहुँचा तो उन्होंने इसकी स्वीकृति नहीं दी। सीता को देवी बनाकर उनके त्याग और बलिदान को छोटा कर देने पे वे सहमत नहीं हो सके। साथ ही वे उस स्थान की स्वाभाविकता को भी नष्ट नहीं होने देना चाहते थे। सीता से जुड़ी हर चीज को वे वैसे ही सँजोये रखना चाहते थे। तब राम की इच्छानुसार उस स्थान को चारों ओर बाड़ लगाकर जानवरों से सुरक्षित कर वैसा ही छोड़ दिया गया।

वहाँ तक जाने में सीता के पैरों में कितने काँटे चुभे होंगे, उनके पैरों की क्या हालत हुई होगी, राम उस अनुभव को भी जीवित रखना चाहते थे अतः वहाँ तक जाने वाले मार्ग को भी बस थोड़ा बहुत ठीक करके ही छोड़ दिया गया था।

मानस और चित्रा ने उस स्थान पर पहुँचकर अपने साथ लाये दीपक को भूमि पर रखा। मस्तक भूमि पर टिकाकर प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वहीं बैठ गये। चारों ओर नीरवता पसरी हुई थी। चित्रा ने मौन तोड़ा-

'आपने एक बात देखी?'

'क्या?'

'हम घर से यहाँ तक आ गये और रास्ते की हवाओं के बाद भी हमारा दीपक जलता ही रहा, एक बार भी नहीं बुझा।'

'हाँ आश्चर्य ही है।'

'यही नहीं, यहाँ खुले में रखा हुआ भी यह आराम से जल रहा है।'

'हाँ और यहाँ पर कितनी अच्छी सुगन्ध भी तो आ रही है!'

'हाँ सचमुच' चित्रा ने कहा।

'और यहाँ पर फैला प्रकाश तो देखो; छोटा सा दीपक और इतना अधिक प्रकाश। यह प्रकाश केवल इस दीपक का प्रकाश नहीं हो सकता चित्रे!'

'सच।'

'चित्रा, तुम्हारा कण्ठ-स्वर बहुत अच्छा है, तुम ईश्वर की कोई स्तुति गाओ न!' मानस ने कहा।

'ठीक है।' कहकर चित्रा ने ईश्वर की स्तुतियाँ शुरू कर दीं। हवा में गूँजती चित्रा की आवाज से वह स्थान संगीत से भर उठा। मानस नेत्र बन्द कर चुपचाप सुन ही नहीं रहा था, बीच-बीच में किसी-किसी पंक्ति में अपना स्वर भी मिला रहा था।

चित्रा को शायद बहुत अधिक स्तुतियाँ याद थीं। वह एक के बाद एक कई स्तुतियाँ गाती चली जा रही थी। कितना समय बीत गया इसका पता ही नहीं चला। स्तुतियाँ समाप्त हुई तब तक समय काफी हो चुका था।

'चित्रे, यहाँ से जाने का मन तो नहीं हो रहा, फिर भी हमें वापस जाना ही है और मुझे लगता है कि अब हमें चलना चाहिये।' मानस ने कहा।

'ठीक है।'

दोनों ने एक बार पुनः भूमि पर सिर रखकर सीता का स्मरण करते हुए उन्हें प्रणाम किया और उठकर खड़े हो गये।

तभी उन्हें लगा, कोई उनके पीछे आकर खड़ा हो गया है। वे मुड़े तो आश्चर्य में पड़ गये। एक व्यक्ति हाथों में दीपक और फूल लिये उनके पीछे खड़ा था। मानस और चित्रा उसके सामने से हटकर एक ओर खड़े हो गये। उस व्यक्ति ने उस स्थान पर दीपक रखा, फूल चढ़ाये, हाथ जोड़े और फिर मस्तक भूमि पर टिका दिया। कुछ देर बाद जब उसने मस्तक उठाया तो मानस और चित्रा ने देखा, उसके नेत्र आँसुओं से भरे हुए थे। यह वही व्यक्ति था जो सीता पर सन्देह करने वालों में प्रथम था और उनका नेतृत्व भी कर रहा था।

उसके चेहरे से लग रहा था कि वह बहुत रोया है। मानस और चित्रा को लगा, उसकी आँखों में पश्चाताप के आँसू थे। उन्हें लगा कि उन्हें वहाँ से हट जाना चाहिये ताकि वह व्यक्ति अपने भीतर भरा हुआ दुःख खुलकर निकाल सके।

उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा और फिर, मानस ने कहा,

‘चलें।’

‘हाँ।'

‘और दीपक?'

‘दीपक यहीं छोड़ देते हैं; क्या माँ का यह स्थान अँधेरा रहेगा?'

‘फिर हमें मार्ग कैसे दिखाई देगा?'

‘माँ का स्मरण करते हुए चलते हैं। मार्ग भी वही दिखायेंगी।'

‘ठीक है चलो।'

मानस और चित्रा, दीपक वहीं छोड़कर उस अमावस की रात में निकल पड़े, किन्तु उस स्थान से बाहर आते ही उन्होंने देखा कि उनके घर जाने वाले मार्ग पर कोई दीपक लिये हुए आगे-आगे जा रहा है। हमारे जैसा ही कोई राहगीर है शायद, उन्होंने सोचा और उसी के पीछे-पीछे चलते हुए वे सुरक्षित ही बस्ती तक पहुँच गये।

मानस और चित्रा जब वापस पहुँचे तो उन्होंने देखा एक जगह लोग एक बड़े झुण्ड में खड़े हैं और कुछ चर्चा कर रहे हैं। वे भी उस झुण्ड में जा कर खड़े हो गये। पता चला कि वे सब लोग भी सीता के प्रयाण-स्थल पर जाने के लिये ही एकत्रित हुये हैं।

‘ओह, अच्छा हुआ हम पहले ही हो आये, अन्यथा जो अद्भुत और दिव्य अनुभूतियाँ हमें हुईं, इस भीड़ के साथ जाने पर उत्सव जैसा तो अवश्य लगता, किन्तु हम उन अनुभूतियों से वंचित रह जाते।' उन्होंने सोचा और ‘माँ की महिमा,' कहते हुये वे उस भीड़ को प्रयाण-स्थल पर जाते हुये देखते रहे। लोगों का एक दल, फिर एक और दल और फिर पता नहीं कितने दल उस ओर चल पड़े और इसके बाद मानस और चित्रा अपने घर की ओर चल दिये।

* * *

राजमहल में दिन खामोशी से बीता था। लक्ष्मी-पूजन हो चुका था, किन्तु लगता था जैसे बस रस्म अदा की गयी है। कहीं कोई उत्साह नहीं था। लक्ष्मी-पूजन के बाद कुछ देर तक सब लोग साथ-साथ बैठे रहे, फिर राम उठकर खड़े हुए तो अन्य लोग भी उठकर खड़े हो गये।

राम, वहाँ से चलकर महल से बाहर आये। लक्ष्मण उनके पीछे ही थे। उन्होंने पूछा,

‘कहीं चलना है क्या?'

‘हाँ, सीता के विश्राम-स्थल तक।'

‘विश्राम-स्थल?' लक्ष्मण उस स्थान के लिये ‘प्रयाण -स्थल' शब्द ही सुनते आये थे, किन्तु आज राम के मुख से ‘विश्राम-स्थल' शब्द सुनकर वे कुछ चौंके।

‘हाँ, सीता ने अपने जीवन का अन्तिम विश्राम वहीं तो किया होगा!' राम ने कहा।

‘हाँ' कहकर लक्ष्मण चुप हो गये।

‘और फिर मृत्यु भी, जीवन का विश्राम-स्थल ही तो है,' राम ने कहा। सीता की मृत्यु की बात से लक्ष्मण ने सीने में अजीब घुटन सी अनुभव की उन्होंने अपने होंठ दबाये। उनके नेत्र भीग उठे थे।

राम ने देखा तो बोले,

‘लक्ष्मण, मैं तुम्हारी आँखें भीगी हुई देख रहा हूँ, पर सोचो, सीता का शरीर अवश्य हमारे बीच में नहीं है, किन्तु वे अमर हैं, उन्हें कोई नहीं मार सकता।'

लक्ष्मण चुपचाप सुन रहे थे। राम की बात समाप्त होने पर भी कुछ बोले नहीं। राम ने फिर

कहा,

'सीता का व्यक्तित्व बहुत विराट था और मन बहुत कोमल। उनकी निश्छलता पर कभी, कहीं, कोई प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाया जा सकता, यद्यपि कुछ दुर्बुद्धि लोगों ने उस पर भी प्रश्न-चिन्ह लगाये।

मैं सोचता हूँ, उस बेहद सहनशील, विषम से विषम परिस्थितियों में भी धैर्य न छोड़ने वाली और माँ गंगा सी पवित्र सीता को अपने चरित्र की ओर उठी हुई उँगलियों से कितनी मर्मान्तक पीड़ा हुई होगी, तब उन्होंने इस संसार को ही छोड़ने का निश्चय किया होगा।'

लक्ष्मण अभी भी चुपचाप सुनते रहे। राम स्वयं भी बहुत भावुक हो उठे थे। उन्होंने आगे कहा,

'लक्ष्मण, अश्वमेघ यज्ञ-स्थल से जाते समय उन्होंने मेरी ओर देखा था। उनकी आँखों में पीड़ा के समुद्र थे और अधरों पर हलकी सी हँसी। आँखों की बात मैं समझ सकता हूँ, किन्तु सोचता हूँ कि उनका दर्द कितना गहरा रहा होगा, जब अधरों पर हँसी आई होगी।' कहकर राम चुप हुए। लगा जैसे वे कहीं खो गये हैं।

'यह भी हो सकता है लक्ष्मण, कि मैं टूट न जाऊँ, इसलिये अपनी आँखों के आँसू रोककर और अधरों पर जबरदस्ती मुस्कान लाकर उनहोंने मेरी ओर देखा हो, किन्तु उनके चेहरे पर तैरती पीड़ा छिप नहीं सकी थी।

वे आँखें और वे अधर मैं कभी भूल नहीं सकूँगा।' राम ने फिर कहा और एक गहरी साँस लेकर वे चुप हो गये।

'कभी-कभी कोई जीवन बस समायोजनों की निरंतरता बनकर रह जाता है।' उन्होंने फिर कहा।

'और कभी-कभी जब चलते-चलते पाँव थक जायें और सफर बहुत लम्बा लगने लगे, तब आँखें बन्दकर शान्त बैठ जाना कितना अच्छा लगता है।'

'जीवन की एक बहुत अच्छी बात यह है लक्ष्मण, कि मृत्यु है।' राम ने कहा।

लक्ष्मण जो बहुत चुपचाप गम्भीरता से राम को सुन रहे थे, बोले,

'भइया, एक बात कहूँ?'

'हाँ लक्ष्मण, कहो।'

'भाभी बहुत अच्छी थीं; उन्हें भूल पाना असम्भव है, किन्तु किरणों को हाथों में कौन पकड़ पाया है? वे आती हैं, प्रकाश देती हैं और चली जाती हैं बस। अपने को सँभालिये भइया।'

राम के नेत्र भीगे हुए थे, फिर भी वे हँसे, बोले,

'तुम ठीक कह रहे हो लक्ष्मण; मैं, शायद दार्शनिकता में डूब रहा था।'

इसके बाद दोनों ओर भीगे हुए नेत्र थे। कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला, फिर लक्ष्मण ने खामोशी तोड़ी,

'मातायें और उर्मिला भी चलना चाहती थीं।'

'ठीक है लक्ष्मण, तुम उन्हें रथ में लेकर आओ।'

'और आप?'

'मैं उस स्थान तक पैदल ही जाना चाहता हूँ, आखिर सीता भी तो वहाँ तक पैदल ही गयी थीं।'

‘भइया आप पैदल जायेंगे तो कोई रथ पर नहीं जायेगा, मातायें भी नहीं, किन्तु वे इतनी दूर उस रास्ते पर पैदल चल सकेंगी क्या?'

‘वे पैदल चल सकें फिर भी यह उचित नहीं होगा।’ राम ने कहा, और फिर कुछ रूक कर बोले-

ठीक है लक्ष्मण, जो भी चलना चाहता है उसे बुला लो, हम रथों से ही चलते हैं।'

लक्ष्मण ने अन्दर जाकर कहा और शीघ्र ही सारा राजपरिवार तैयार होकर बाहर आ गया। कैकेयी के पीछे-पीछे मन्थरा भी आयी और सकुचाई हुई एक ओर खड़ी हो गयी। वो भी साथ चलना चाहती थी, किन्तु कह नहीं पा रही थी। राम ने उसे देखा, उसके मन की बात समझी और पूछा,

‘चलना चाहती हो?'

उसने कोई उत्तर न देकर सिर झुका लिया।

‘चलो, रथ में बैठ जाओ।' राम ने कहा।

मन्थरा संकोच के साथ माताओं के रथ में, नीचे बैठ गयी। कुछ देर में ही सीता का प्रयाण-स्थल आ गया।

सभी लोग रथ से उतरे और उस वृक्ष के पास जाकर, प्रणाम करके खड़े हो गये।

कैकेयी ने वहाँ दीप जलाकर रखा और अन्य लोगों ने फूल चढ़ाकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि दी।

लव और कुश उस भूमि को नमन करने के बाद वहीं बैठ गये।

‘यहाँ बैठकर मुझे ऐसा लगता है जैसे हम माँ की गोद में बैठे हैं!' लव ने कहा।

‘मुझे भी ऐसा ही लगता है लव।' कुश ने उत्तर दिया।

अमावस की रात के अंधकार में वहाँ जलते हुए दीपों का झिलमिलाता प्रकाश, वहाँ चढ़े हुये बहुत से फूलों की सुगन्ध और किसी प्रभामण्डल का आभास, कुल मिलाकर वहाँ होना, पवित्रता में डूबने जैसा लग रहा था।

सभी कुछ देर तक वहाँ, उस पवित्रता के अनुभव में डूबे से खड़े रहे। किसी का भी मन वहाँ से वापस होने का नहीं था, किन्तु आने वालों का ताँता सा लगा था और भीड़ बढ़ती जा रही थी, अतः उन्होंने वापस लौटने का निर्णय लिया तो लव और कुश ने पुनः भूमि पर सिर रखा, वहाँ की मिट्टी मस्तक पर लगायी और खड़े हो गये।

इसके बाद सभी वापस हो लिये। रास्ते-भर कोई कुछ बोला नहीं, बस किसी स्त्री की सिसकियों की आवाज बीच-बीच में इस निस्तब्धता को भंग कर रही थी।

* * *

महल में लौटने के बाद सभी एक बार पुनः पूजा-स्थल पर एकत्रित हुए। लक्ष्मी जी का दीपक जल रहा था, किन्तु कौशल्या ने बहुओं से उसमें और तुलसी चौरा पर जलते दीपक में और घी डलवाया ताकि वे रात भर जल सकें, इसके बाद उन्होंने कहा-

‘आओ, हम सभी लोग सीता के कक्ष में चलें। महल में सबसे पहले, वहीं दीप प्रज्ज्वलित किये जाएंगे।' सभी कौशल्या के साथ सीता के कक्ष की ओर चल पड़े। सीता के जाने के बाद से उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया था। राम कभी-कभी वहाँ जाकर बैठते थे।

उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति ने कक्ष में जगह-जगह दीपक रख कर उसे आलोकित

कर दिया।

'अब देखो, महल का कोई कक्ष या कोना बिना दीपकों के न रह जाय!' कौशल्या ने बहुओं से कहा, फिर सभी वहाँ से चलने को हुए, किन्तु राम कुछ ठिठके; शायद वे इतना शीघ्र नहीं जाना चाहते थे।

कौशल्या की दृष्टि बराबर राम पर थी। उन्होंने राम का मन समझा और उन्हें छोड़कर सभी को बाहर चलने का संकेत किया। राम वहीं रुक गये।

सबके जाने के बाद राम कुछ देर तक वहाँ खड़े रहकर सीता के कक्ष की एक-एक वस्तु देखते रहे, फिर कक्ष में लगे हुए सीता के चित्र पर दृष्टि टिकाकर बैठ गये, किन्तु कुछ देर बाद ही उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। थोड़ी देर में ही उन्हें अपने शरीर का भान समाप्त हो गया और लगने लगा जैसे उनके अन्दर-बाहर सब जगह सीता और सिर्फ सीता हैं।

बहुएं सारे महल में दीपों की व्यवस्था देखने के बाद वापस आईं तो कौशल्या ने उन्हें सबके भोजन की व्यवस्था करने के लिये कहा। नित्य, पुरुषों के भोजन के बाद ही स्त्रियाँ भोजन के लिये बैठती थीं, किन्तु आज कौशल्या ने व्यवस्था दी कि सारा परिवार साथ में ही भोजन करेगा। राम अभी भी नहीं आये थे।

लक्ष्मण स्वयं, उन्हें लाने के लिये उठे। वे सीता के कक्ष में पहुँचे तो राम ऐसे नेत्र बन्द किये बैठे थे जैसे वे समाधि में हों। लक्ष्मण चुपचाप उनके नेत्र खुलने की प्रतीक्षा करने में खड़े हो गये।

राम के नेत्र बन्द थे, किन्तु किसी के आने का आभास शायद उन्हें हो गया। उन्होंने नेत्र खोल दिये। राम के खुले नेत्र देखकर लक्ष्मण ने धीरे से आवाज दी।

'भइया!'

राम ने उनकी ओर देखा।

'भोजन पर सभी लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'ओह,' राम ने कहा और वे उठ खड़े हुये।

दीपावली का पर्व था। विविध प्रकार के व्यंजन बने थे, किन्तु शायद ही किसी ने ठीक से भोजन किया हो। बहुत ही खामोश वातावरण में भोजन सम्पन्न हुआ और फिर उतनी ही खामोशी से सभी अपने-अपने कक्षों की ओर बढ़ गये।

* * *

राम अपने कक्ष में पहुँचे ही थे कि द्वार पर खट्-खट् हुई। राम ने उठ कर देखा, कैकेयी थीं।

'आइए माँ!' राम ने कहा।

कैकेयी अन्दर आयीं। वे बहुत उदास थीं। राम के आग्रह पर उन्होंने आसन लिया।

'माँ, आप कुछ परेशान लग रही हैं!' राम ने कहा।

कैकेयी सिर झुकाकर बैठी हुई थीं। उन्होंने राम के इस प्रश्न पर एक बार सिर उठाकर उनकी ओर देखा और फिर ऊपर कहीं शून्य में देखने लगीं। राम ने पुनः कहा-

'माँ, क्या बात है, आप बहुत दुखी और उदास लग रही हैं।'

'बेटे, मेरे छोटे से दुराग्रह का इतना बड़ा दुष्परिणाम होगा, यह मैं सोच भी नहीं सकती थी। मैं अपराधी हूँ और मेरा अपराध आज भी सहस्रों फन उठाकर मुझे डस रहा है।'

'माँ, यदि आपसे कोई भूल हुई भी है तो इसके लिये आपने जितना सहा है वह कम नहीं है।'

आपने दो-दो बार अपने प्राणों को संकट में डालकर पिता के प्राणों की रक्षा की थी और मेरे वनवास जाने की बात को यदि एक दुर्घटना मान लें तो जीवन-भर आपने भरत से भी अधिक स्नेह मुझे दिया है, यह कौन नहीं जानता।

मेरे मन में आपके प्रति माता कौशल्या से कम आदर का भाव नहीं है।' राम ने कहा।

कैकेयी का मन पहले ही भरा हुआ था। राम की सहानुभूतिपूर्ण बातों से उन्हें रोना आ गया।

'आपके इस रुदन से मुझे बहुत कष्ट हो रहा है माँ; और मुझे यह भी लग रहा है कि कहीं मुझसे आपके सम्मान में कोई त्रुटि तो नहीं हुई है।'

राम के यह कहने के बाद कैकेयी ने किसी तरह रोना बन्द किया, किन्तु उनकी सिसकियाँ फिर भी नहीं रुकीं।

राम परेशान हो उठे। उन्होंने कैकेयी के पास आकर उनके हाथ थाम लिये।

इसके बाद कैकेयी उठीं और उन्होंने राम को अपने सीने में समेट लिया, स्नेह किया और फिर अलग होकर बोलीं-

'नहीं राम, तुमने और सीता ने सदा ही मुझे बहुत अधिक आदर और स्नेह दिया है।'

'तो फिर अपने आप को सँभालिए और इस अपराधबोध से निकलिए, माँ।'

'ठीक है।' कहकर कैकेयी वहीं बैठ गयीं। सिसकियाँ कम तो हुई थीं पर रुकी नहीं थीं। राम भी उनके पास बैठ गये और कैकेयी के सिर पर हाथ रखकर उसे अपने कंधे पर टिका लिया। कुछ देर बाद कैकेयी की सिसकियाँ रुकीं। वे उठीं। आँसुओं से भीगा अपना मुख वस्त्र से साफ किया और बोलीं,

'चलती हूँ।'

'अच्छा माँ,' राम ने कहा।

कैकेयी धीरे-धीरे चलते हुये कक्ष से बाहर हो गयीं। राम उन्हें जाते हुये देखते रहे।

राम को याद आया, जब वे लोग चौदह वर्षों बाद वन से लौटे थे, तब सबसे अधिक प्रसन्न वे ही थीं। कैकेयी ने उन्हें, सीता और लक्ष्मण तीनों को बारी-बारी से हृदय से लगा लिया था। सबसे अधिक स्वागत, और सबसे अधिक खुशियाँ उन्होंने ही मनाई थीं। रात्रि में सारे महल में जलते दीपक रखने के लिये वे स्वयं दौड़ती फिर रही थीं।

लक्ष्मण ने जब उनके पैर छुए तो उन्होंने लक्ष्मण के हाथ पकड़ लिये थे; बोलीं थीं-

'लक्ष्मण, मैंने सुना है तू मुझ पर बहुत क्रोधित है; माँ को क्षमा नहीं करेगा।'

'माँ, वह समय बीत चुका है, मैं पहले जैसा ही आपका बेटा हूँ और आप मेरी माँ।' लक्ष्मण ने कहा था।

सीता को वे हाथ पकड़कर अपने कक्ष में ले गयी थीं।

'बेटी, मैंने तुझे वल्कल वस्त्रों (पेड़ की छाल से बने वस्त्र) में भेजा था; मेरे उस पाप की सजा मुझे मिल चुकी है। मैंने पति तो खोया ही, भरत भी मुझे माँ नहीं कहता; तुम तो मुझे माँ कहोगी न!'

'माँ, आप सदैव मेरी माँ ही रहेंगी,' सीता ने कहा था।

सीता की बात ध्यान में आते ही राम की आँखों में उस दिन के, सीता के साथ बीते सारे क्षण घूम गये। सीता का मुख सदैव चमकता रहता था। उस दिन भी वह चमक रहा था, किन्तु अश्वमेध के बाद जब वे सब छोड़कर जा रही थीं, उनके चेहरे की चमक विलक्षण थी।

राम के वन से लौटने के बाद से कैकेयी की दासी मन्थरा बहुत डरी हुई थी, किन्तु सीता को उसका भी ध्यान था। मन्थरा को लग रहा था कि शायद लक्ष्मण उसको दण्ड देंगे, इसलिये जरा सा मौका मिलते ही सीता ने उसे बुलाकर आश्वस्त किया था कि डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस बहुत अधिक व्यस्तताओं से भरे दिन में भी सीता ने उसका भी ध्यान रखा, जो उनके वनवास पर जाने का कारण बनी थी।

* * *

जब से सीता गयी थीं, राम ने अपनी व्यस्ततायें बहुत अधिक बढ़ा ली थीं, किन्तु फिर भी वे उनकी यादों से बच नहीं पा रहे थे। एकान्त पाते ही सीता की यादें उन्हें घेर लेती थीं, फिर आज तो दिन ही विशेष था। वे सीता की स्मृतियों में खोये हुये थे, तभी माता कौशल्या की आवाज से वे चौंके।

'राम।' कौशल्या की आवाज थी।

'हाँ,' कहते हुये राम ने सिर उठाया और सामने कौशल्या को देख वे कुछ अचम्भित भी हुए और उनके आने का भान भी न हो पाने की अपनी मनःस्थिति पर संकोच से भी भर उठे।

'माँ, आप कब आईं?' उन्होंने कहा।

'बस अभी।'

'बैठिये न।'

'हाँ, बैठती हूँ।'

कौशल्या स्वयं तो बैठीं ही, उन्होंने हाथ पकड़कर राम को भी अपने पास ही बिठा लिया और छोटे बच्चे की तरह उनके मस्तक पर हाथ रखकर उनके बालों को सँवारने लगीं। कुछ देर बाद बोलीं,

'तू बहुत दुखी है न।'

'नहीं माँ, विषम परिस्थितियों में जीने का अभ्यास है मुझे।'

'जानती हूँ।' कौशल्या ने कहा, फिर कुछ रुककर बोलीं-

'इस अवसर पर हर वर्ष राजा जनक स्वयं आते थे, या उनका सन्देश आता था, किन्तु इस बार न वे आये और न उनका कोई सन्देश ही आया।'

'उनका सन्देश आया है माँ। उन्होंने कहलवाया है कि सीता की अनुपस्थित में अयोध्या कितनी सूनी लग रही होगी यह कल्पना भी उन्हें सालती है। अयोध्या आने पर वहाँ सीता का न होना उन्हें बहुत अधिक पीड़ा देगा, अतः वे आ नहीं रहे हैं, किन्तु अपनी शुभकामनायें और बहुत से उपहार भेजे हैं।'

'राम, राजा जनक, जो विदेह कहे जाते हैं, वे भी सीता के न होने से इतने विचलित हैं, इस बात से मुझे आश्चर्य नहीं हैं।'

आश्चर्य इस बात से है कि उन्होंने अपनी बेटी के इस तरह जाने के दुःख को कैसे सहा होगा।'

राम कुछ नहीं बोले।

'रात हो रही है, मैं चलती हूँ और तुम भी सो जाओ।' कौशल्या ने कहा और उठने लगीं तो राम ने उन्हें पकड़कर बिठा लिया।

'आज आप भी यहीं सो जाइये न माँ!' उन्होंने कहा। कौशल्या हँसीं,

'ठीक है!' उन्होंने कहा और वहीं लेट गईं। राम उन्हीं के पास उनके पेट से अपना सिर सटाकर लेट गये। कौशल्या उनके सिर पर हाथ रखकर उनके बालों में उँगलियाँ फिराने लगीं। कुछ देर बाद राम सीधे हुए और माँ का सिर अपने सीने से सटाकर सो गये।

* * *

राम सो गये थे, किन्तु कौशल्या सो नहीं सकीं। कुछ देर बाद उन्होंने धीरे से राम के सीने से अपना सिर हटाया और अपना सिर राम के सिर के बराबर में लाकर उनका मुख देखने लगीं।

सोते हुए राम के बाल उनके मस्तक और मुख पर आ गये। कौशल्या ने धीरे से राम के वे बाल पीछे किये। उनका मुख सहलाया फिर 'मेरा बच्चा' कहकर धीरे-धीरे उनका सिर सहलाने लगीं। कितना छोटा सा था जब ऋषि विश्वामित्र के आग्रह पर छोटे भाई लक्ष्मण के साथ ताड़का और दूसरे राक्षसों के वध के लिये गया था, उन्होंने सोचा।

उन्हें याद आया कि विश्वामित्र द्वारा राम और लक्ष्मण को इन राक्षसों के वध के लिये उनके आश्रम भेजने की बात पर, राजा दशरथ स्वयं भी कितने विचलित हो उठे थे, किन्तु विश्वामित्र के क्रोध करने और गुरु वशिष्ठ के समझाने पर वे राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के आश्रम में भेजने के लिये राजी हो गये थे।

कौशल्या को यह भी याद आया कि इसके बाद कैकेयी कितना फूट- फूटकर रोई थीं और स्वयं उन्होंने और सुमित्रा ने किस प्रकार सीने पर पत्थर रखकर अपने बच्चों का वियोग सहा था।

जब कौशल्या का विचार प्रवाह टूटा, उन्होंने राम के चेहरे की ओर देखा। वे थके हुए बालक की भाँति गहरी नींद में सो रहे थे।

कौशल्या पुनः उनके मुख और बालों को छोटे बच्चे की भाँति सहलाने लगीं, फिर कुछ देर बाद उन्होंने राम का हाथ उठाया और मोड़कर उनकी उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फँसा कर देखने लगीं।

'मेरे बच्चे ने इन्हीं कोमल हाथों से कितने बड़े-बड़े राक्षसों का विनाश किया है।' कहकर कौशल्या ने राम की उँगलियाँ अपनी पलकों से लगायीं फिर उनकी हथेली चूमी और उस हाथ को अपने सीने में दबाकर लेट गयीं।

उन्हें लगा वे बहुत थकी हुई हैं। शायद यह दिनभर की भाग-दौड़ के कारण होगा, उन्होंने सोचा, किन्तु नींद नहीं आ रही थी। राम की हथेली सीने से लगाये हुए ही, वे फिर स्मृतियों में डूब गईं।

* * *

राम, सीता और लक्ष्मण वन को जा चुके थे। सारी अयोध्या में दुख और सन्नाटा पसरा हुआ था। लोग अपने-अपने कामों मे लगे थे पर उनके चेहरों की हँसी गायब हो चुकी थी। नगर के घरों, गलियों, चौराहों पर राम का वन-गमन चर्चा का विषय बना हुआ था।

लोग सीता और लक्ष्मण की प्रशंसा करते नहीं थक रहे थे, किन्तु उनके मन में कैकेयी

के प्रति बहुत अधिक आक्रोश था। उनके, राजा दशरथ से माँगे हुये दो वर, अयोध्या के लोगों को अपने लिये श्राप जैसे लग रहे थे। सर्वत्र कैकेयी के इस व्यवहार की निन्दा हो रही थी। राजा दशरथ के प्रति जनता में दो मत थे। कुछ लोग उनके वचन से बँधे होने के कारण इसे उनकी मजबूरी बता रहे थे, किन्तु उनके आलोचक भी कम नहीं थे।

ननिहाल से लौटने पर भरत इसको किस प्रकार लेंगे, इस बारे में भी लोगों में बहुत अधिक चर्चा थी और राम के प्रति भरत के प्रेम को जानने वालों को विश्वास था कि भरत इन बातों से बहुत दुखी होंगे।

राजमहल तक जनसाधारण में फैली चर्चा बराबर पहुँच रही थी। भरत के प्रति जैसी जन-भावना थी, कुछ वैसी ही आशंका कैकेयी को भी होने लगी थी। उन्हें भरत के आने और उनकी प्रतिक्रिया जानने की बहुत अधिक प्रतीक्षा थी। यदि भरत ने सहर्ष राज्य स्वीकार कर लिया तब तो ठीक, अन्यथा कैकेयी ने सोचा था कि वे उन्हें समझाने का प्रयत्न करेंगी। किन्तु मन के किसी कोने में यह भी था कि यदि भरत उनके समझाने से नहीं माने तो! इस 'तो' ने कैकेयी को बहुत अधिक बेचैन कर रखा था। फिर समूचे महल में हर उस दृष्टि पर, जो उनकी ओर उठती थी, कैकेयी को अपने प्रति तिरस्कार का भाव ही नजर आता था। उन्होंने स्वयं को अपने निजी कक्ष तक ही सीमित कर लिया था।

राजा दशरथ बहुत दुखी, अस्वस्थ और कमजोर हो रहे थे। उनकी आँखों के आँसू थम नहीं रहे थे। कौशल्या और सुमित्रा के मन में राजा दशरथ के प्रति बहुत सी शिकायतें थीं, किन्तु उनकी दशा देखकर वे अपने दुःख भूल चुकी थीं।

उनकी बेहतर देख-रेख हो सके, इसके लिये कौशल्या उन्हें अपने भवन में ले आयीं। दशरथ ने अपने प्रति कौशल्या की चिन्ता देखी,

'तुम व्यर्थ ही परेशान हो कौशल्या, मैं बचूँगा नहीं; फिर राम के बिना मुझे अपने जीवन का कोई अर्थ भी तो नहीं लगता,' उन्होंने कौशल्या से कहा।

'राम के बिना जीवन का अर्थ तो मुझे भी नहीं लगता, किन्तु वे केवल चौदह वर्षों के लिये ही तो गये हैं, यह समय भी कट ही जायेगा;' कौशल्या ने कहा।

'मैं चौदह वर्षों तक प्रतीक्षा नहीं कर पाऊँगा, कौशल्या; मुझे जल्दी है।'

कौशल्या ने दशरथ के मुँह पर अपनी हथेली रख दी।

'कैसी बातें कर रहे हैं?'उन्होंने कहा।

दशरथ ने बहुत धीरे से अपने मुख पर से कौशल्या का हाथ हटाया।

'मुझे कहने दो कौशल्या, रोको मत।'

'ठीक हो जाइये, फिर कहियेगा; और आप ठीक हो जायें, फिर हम बच्चों से मिलने वन चलेंगे; इसमें तो कोई रोक नहीं है ना।'

'तुम अवश्य ही उनसे मिलने जाना, किन्तु मेरे पास समय नहीं है, अतः मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, मुझे कह लेने दो।'

इसके बाद कौशल्या चुप होकर दशरथ के मुख की ओर देखने लगीं।

'कौशल्या, तुम बड़ी हो, कैकेयी को क्षमा कर देना; उसका दोष उतना नहीं है, जितना सब समझ रहे हैं।'

कौशल्या को यह बात समझ में भी नहीं आयी और प्रिय भी नहीं लगी। उन्होंने प्रश्न भरी

दृष्टि से दशरथ की ओर देखा।

'मेरी अपनी गलतियाँ भी तो हैं।' दशरथ ने कहा।

'मैं समझी नहीं।'

'मैंने केवल शब्द सुनकर तीर चलाया था, जिसने अन्धे माता-पिता से उनके एक मात्र सहारे श्रवण कुमार को छीन लिया। किसी पर भी तीर चलाने से पूर्व हमें यह तो निश्चित कर ही लेना चाहिये कि हमारे निशाने पर कौन है।

किसी निरपराध की जान ले लेना छोटी भूल नहीं है; फिर अन्धे, असहाय और वृद्ध श्रवण के माता-पिता की या किसी भी अकारण ही सताये हुये मजबूर व्यक्ति की आह भी यदि निष्फल हो जायेगी तो लोगों का भगवान पर से विश्वास उठ नहीं जायेगा क्या!'

कौशल्या क्या कहतीं, वे चुप ही रहीं।

'मुझे पूरा विश्वास है कि मुझे इस परिस्थिति का सामना उस पाप के कारण ही करना पड़ रहा है। और रही कैकेयी की बात, तो कैकेयी ने एक बार शम्बर से युद्ध के समय और दूसरी बार एक प्राणघातक बीमारी के समय अपने प्राणों को खतरे में डालकर मेरी जीवन रक्षा की थी। इसे मैं कभी नहीं भूला, किन्तु कैकेयी के कारण राम, सीता और लक्ष्मण को ही नहीं अयोध्या की जनता को भी बहुत कष्ट हुआ है।

यह अत्यन्त पीड़ादायक है और फिर सीता तक को मात्र वल्कल वस्त्रों में ही वन भेज देना तो घोर निन्दनीय भी है।

इतना कहने के बाद दशरथ चुप होकर कौशल्या के मुख की ओर देखने लगे। शायद वे कौशल्या से किसी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में थे, किन्तु कौशल्या ने उस बात पर अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, अपितु यह देखकर कि दशरथ इतनी देर तक बात करने के कारण कमजोरी महसूस करने लगे थे, बोलीं,

'इतनी देर बातें करने के कारण आप थक गये हैं, शेष बातें हम थोड़ी देर बाद कर लेंगे।'

'नहीं कौशल्या, मुझे कहने दो; फिर पता नहीं मुझे यह सब कहने का समय मिले या नहीं।'

अब कौशल्या ने कुछ नहीं कहा, बस दशरथ के हाथ स्नेह से अपना हाथ रख दिया। दशरथ ने कौशल्या के उस हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के मध्य लेकर कहा, - 'एक बात और भी है कौशल्या।'

'क्या?'

'मेरे द्वारा कैकेयी को दो वर देने की बात तो चर्चा में है, किन्तु यह भी सच है कि जब तुम्हारे और सुमित्रा के कोई सन्तान नहीं हुई, तब सन्तान की कामना से मैंने कैकेयी के पिता से उसका हाथ माँगा था और उस समय कैकेयी का विवाह मुझसे करने के पूर्व उन्होंने मुझसे वचन लिया था कि कैकेयी से उत्पन्न पुत्र ही अयोध्या के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी होगा; मैंने उन्हें यह वचन दिया था कौशल्या।'

'भरत के राजा बनने में तो हममें से किसी को भी कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु राम के वनवास की बात भी क्या आवश्यक थी?' कौशल्या ने कहा।

'हो सकता है, कैकेयी को लगा हो कि एक अति योग्य बड़े भाई के सामने भरत के राजा बने रहने में कुछ कठिनाइयाँ पैदा हो सकती है।'

‘कैसी कठिनाइयाँ? क्या राम, भरत के विरुद्ध कभी भी कुछ सोच सकते थे।'

‘नहीं, किन्तु प्रजा में असंतोष पैदा होने की सम्भावना तो थी ही।’

‘हाँ, यह तो है।’

‘और फिर कौशल्या, यह भी सोचो कि राम के वन जाने में हो सकता है कहीं समाज का कोई हित भी छुपा हो।'

‘काश! यह बात सबके लिये हितकर ही साबित हो।'

‘इसलिए कौशल्या तुम कैकेयी को क्षमा ही नहीं करना, वरन मेरे जाने के बाद चूँकि तुम्हीं इस घर की सबसे बड़ी होगी, अतः औरों को भी कैकेयी के प्रति मन में आये आक्रोश भुलाने के लिये कहना।'

कौशल्या अभी भी कुछ नहीं बोलीं।

‘बोलो कौशल्या; मुझे वचन दो कि तुम ऐसा करोगी। घर के सदस्यों में आपस में कटुता नहीं होनी चाहिये, यह विनाशकारी होती है।' दशरथ ने कहा।

‘मैं वचन देती हूँ कि मैं आपकी बात का पूरा ध्यान रखूँगी; उसे व्यर्थ नहीं जाने दूँगी।'

बातें करते हुये दशरथ बहुत थक गये थे। कौशल्या का हाथ, जो वे अपनी हथेलियों में लिये हुये थे, उसे अपने सीने से सटा लिया।

‘मेरे पास अब और समय नहीं बचा है; चलता हूँ,' उन्होंने कहा और उनका सिर एक ओर लुढ़क गया।

पुत्र और पुत्रवधू, चौदह वर्षों के लिये वनवास पर, बहुत दूर दण्डकारण्य के रास्ते पर और उस वेदना को न सह पाने के कारण पति की इस प्रकार मृत्यु। सब कुछ कौशल्या के लिये भयानक वज्रपात जैसा था। कौशल्या चीत्कार कर रो उठीं। सुमित्रा पास ही थीं।

वे भी आ गयीं। बहुएं उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति भी आ गयीं। थोड़ी देर में ही सारा महल वहाँ एकत्रित हो गया।

कैकेयी अपने कक्ष में थीं। कौशल्या और सुमित्रा के क्रन्दन की आवाजें उन तक पहुँचीं तो वे समझ गयीं कि राजा दशरथ नहीं रहे। पुत्र शोक में वे बहुत दुखी हैं, यह उनके संज्ञान में था, किन्तु उनका सोचना था कि कुछ दिन बाद सब कुछ ठीक हो जायेगा। इस तरह की अनहोनी की आशंका उन्हें नहीं थी।

कैकेयी का मन काँप उठा। इसमें जितना राजा दशरथ के न रहने का शोक था, उतना ही बाहर जाने पर लोगों की प्रतिक्रियाओं का भय भी था। मन्थरा पास ही खड़ी थी। कैकेयी ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में भी भय था।

कैकेयी ने उससे बाहर जाकर पता करने के लिये कहा। मन्थरा गयी और बहुत तेजी से वापस आ गयी। उनकी आशंका सच थी। राजा का देहान्त हो चुका था। कैकेयी की आँखों में लोक-निन्दा के भय के साथ ही असमंजस भी उभर आया।

‘हमें क्या करना चाहिये?' कैकेयी ने मन्थरा से पूछा।

‘वहीं चलते हैं' मन्थरा ने कहा।

‘हमें देख कर लोग, पता नहीं कैसी-कैसी प्रतिक्रियायें देने लगें, मुझे भय सा लग रहा है।'

‘हमें वहाँ जाना तो है ही अन्यथा वे प्रतिक्रियायें और तीव्र होंगी, फिर महाराज के न

रहने से भरत के राजा बनने में अब कोई भी व्यवधान शेष नहीं रहा। वे आते ही होंगे। उसके बाद आप राजमाता होंगी, अतः मुझे नहीं लगता कि कोई आपके सामने कुछ कहने का साहस करेगा।'

'वह तो पता नहीं, किन्तु हाँ, जाना तो है ही,' कहकर कैकेयी उठीं और कुछ सशंकित और कुछ सहमी हुई सी कौशल्या के महल, जहाँ राजा दशरथ का मृत शरीर पड़ा था, में पहुँच गयीं और रोने लगीं।

न किसी ने कैकेयी से कुछ कहा, न किसी ने उनसे कोई बात की, किन्तु वहाँ उपस्थित स्त्रियों की आँखों में अपने प्रति उपेक्षा और क्रोध के भाव कैकेयी ने स्पष्ट देखे।

रोते-रोते कौशल्या की दृष्टि, कैकेयी की ओर गयी। एक पल के लिये कौशल्या रोना भी भूल गयीं। उन्हें लगा जैसा उनका दुर्भाग्य सशरीर उनके सामने खड़ा है, किन्तु तभी दशरथ की बातें याद आ गयीं। उन्होंने कैकेयी को हाथ पकड़कर अपने पास कर लिया।

कैकेयी जो कि डर रही थीं कि उन्हें निरादर न झेलना पड़े, कौशल्या के इस व्यवहार से कुछ आश्चर्य में पड़ गयीं और -

'दीदी, मेरे कारण ही हमें यह दिन देखना पड़ रहा है।' कहते हुए वे कौशल्या से लिपटकर रो पड़ीं।

'ऐसा मत कहो कैकेयी! हमारे भाग्य में शायद यही लिखा रहा होगा,' कौशल्या ने कहा, किन्तु उनका दर्द और विलाप देखा नहीं जा रहा था। तब सुमित्रा ने आगे आकर उन्हें सँभाला।

'दीदी, हमें परिस्थितियों से लड़ना होगा, जो हो गया उसे तो बदला नहीं जा सकता, किन्तु रात्रि के समान हमारे जीवन में आये ये दिन भी बीत ही जायेंगे।' सुमित्रा ने कहा।

* * *

बिस्तर पर लेटी और राम के सिर पर उँगलियाँ फिराती कौशल्या को ऐसा लग रहा था जैसे वह सारा कुछ आज एक बार फिर उनकी आँखों के सामने घटित हो रहा हो।

सहसा विचारों ने दिशा बदली और कौशल्या की आँखों के सामने अश्वमेध-यज्ञ में सीता से सम्बन्धित दृश्य आ गया। उन्हें याद आया कि सीता के जाने के बाद लोग यह कह रहे थे कि सीता देवी थीं; वे भूमि में समा गई हैं।

'सचमुच वह देवी तो थीं ही।' कौशल्या ने स्वयं से कहा। रात बहुत हो गई थी। चारों ओर घना सन्नाटा पसरा हुआ था। कक्ष में धीमी लौ में जलते दीपक के प्रकाश में उन्होंने दीवार पर टँगे सीता के चित्र पर दृष्टि जमा दी।

लाल वस्त्र और घने काले केशों के मध्य सीता का चेहरा उस धीमे प्रकाश में चमकता हुआ सा लग रहा था। उन्हें लगा कि सीता के चेहरे पर प्रतीत होता यह प्रकाश, मात्र इस धीमे से दीपक का प्रकाश ही नहीं है।

वे आश्चर्यचकित हुईं और 'सीता देवी तो थीं ही' यह विचार उनके मस्तिष्क में एक बार और आ गया, फिर उन्होंने राम की ओर देखा। वे वैसे ही सो रहे थे।

कौशल्या धीरे से उठीं, कक्ष के बाहर आयीं और महल के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कहीं-कहीं कुछ दीपक अभी भी जल रहे थे। वे पुनः अन्दर आयीं, राम का सिर सीने से सटाकर लेट गयीं और सोने का प्रयास करने लगीं।

11. एक सुबह ऐसी भी

वह सुबह भी रोज जैसी ही थी। कौशल्या स्नानादि कर पूजा पर बैठ गयीं। पूजा समाप्त होने के बाद उन्होंने राम को अपने कक्ष में बुलवाया। राम आये तो उनसे, उन्होंने कैकेयी को बुलवाया।

सुबह-सुबह इस आमंत्रण पर कैकेयी थोड़ी हैरान हुई पर शीघ्रता से वहाँ आयीं। उनके आने के बाद कौशल्या ने राम से कुछ देर बाहर के कक्ष में प्रतीक्षा करने को कहा। उनकी इस बात पर कैकेयी और राम दोनों को आश्चर्य हुआ।

राम चुपचाप उठे और बाहर के कक्ष में अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगे। कौशल्या ने कैकेयी का हाथ पकड़ा और

'कैकेयी बैठो' कहते हुये उन्हें अपने पास बिठा लिया।

'कुछ विशेष है?' कैकेयी ने पूछा।

'विशेष तो कुछ भी नहीं है, पर आज मुझे तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं।'

'ठीक है।' कैकेयी ने कहा।

'कैकेयी, कभी मेरे मन में तुम्हारे प्रति बहुत आक्रोश था!' कौशल्या ने कहा।

'जानती हूँ, पर मैंने जो किया था उसे देखते हुए वह स्वाभाविक ही था; मुझे उसके लिये आपसे या किसी से कोई शिकायत नहीं है।'

'किन्तु वह समय बीत चुका है कैकेयी, और जो हुआ शायद वही विधाता ने इस अयोध्या के राजवंश के भाग्य में लिख रखा था। आज मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है।'

'यह आपका बड़प्पन है और मुझे आपके स्तर का संज्ञान है।'

'किन्तु कैकेयी, मैंने तुम्हें यह कहने के लिये नहीं बुलाया है।'

'फिर?' कैकेयी ने कहा।

'कैकेयी, एक छोटी सी भूल के कारण आज तक तुमने जितना अधिक मानसिक सन्ताप झेला है, संभवत: कोई और नहीं झेल पाता।'

'मेरा भाग्य' वैâकेयी ने कहा और वे सहसा बहुत सुस्त और गम्भीर हो गयीं।

'और उन आक्रोश के दिनों में मैंने तुमसे जो भी व्यवहार किया होगा उसके लिये मुझे आज भी दुख है, मुझे क्षमा कर देना कैकेयी।'

'आप ऐसी बात क्यों कर रही हैं, क्षमा तो मुझे आपसे माँगनी चाहिए।'

कैकेयी की इस बात पर कौशल्या हँसीं,

'अच्छा चलो, हम दोनों एक दूसरे को क्षमा करते हैं।' कौशल्या ने कहा और फिर कैकेयी को बिना किसी प्रतिवाद का अवसर दिये, उन्होंने राम को आवाज दी,

'राम!'

'जी!' कहते हुए राम आ गये।

‘भरत कहाँ होंगे?' कौशल्या ने पूछा।

‘देखता हूँ,' कहते हुए राम बाहर गये और कुछ देर में ही भरत के साथ वापस आ गये।

‘माँ, आपने बुलाया है?' भरत ने कौशल्या से कहा।

‘हाँ'

भरत चुपचाप सामने खड़े रहे।

‘भरत मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे?'

‘माँ, यदि मैं इस योग्य हुआ तो अवश्य।'

‘भरत, यदि किसी बहुत अच्छे व्यक्ति से जीवन में कभी कोई गलती हो जाये तो क्या उसे जीवन भर उसके लिये प्रताड़ित करना उचित है।'

कौशल्या की बात का निहितार्थ भरत ने ही नहीं कैकेयी और राम ने भी समझा। थोड़ी देर पहले हुई बातों के कारण कैकेयी को तो कौशल्या का यह प्रश्न अनपेक्षित सा नहीं लगा, किन्तु राम और भरत के लिये यह प्रश्न बहुत अनपेक्षित सा था। वे आश्चर्य से भर उठे।

भरत, तुरन्त इसका कोई उत्तर नहीं दे सके। कुछ सोचकर उन्होंने कहा,

‘उस गलती से कितना अधिक नुकसान हुआ है, क्या यह विचारणीय नहीं होता?' भरत ने कहा।

‘होता है, यह भी विचारणीय होता है; किन्तु कई बार किसी बड़े नुकसान के पीछे एक ही कारण नहीं होता, उनकी एक शृंखला होती है।'

भरत चुप थे।

‘तुम कुछ बोल नहीं रहे हो भरत!'

‘क्या कहूँ माँ, मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।'

‘यही कि जिस नुकसान की बात तुम्हारे मन में है, उसके पीछे कारणों की एक शृंखला है या नहीं?'

भरत तो नहीं बोले, पर राम ने कहा।

‘है, कारणों की एक लम्बी शृंखला है इसके पीछे।'

‘भरत, ये तुम्हारी माँ हैं,' कौशल्या ने कैकेयी की ओर इशारा करके कहा।

‘जीवन में सिर्फ एक भूल के कारण किसी की सारी अच्छाइयों को नकार देना उचित है क्या?

कुछ रुककर कौशल्या ने फिर कहा,

‘उस एक भूल के कारण ये दुखी भी हैं, लज्जित भी, और तब से आज तक पता नहीं कितनी मानसिक व्यथा भी झेल चुकी हैं। तुम इनके साथ बहुत अन्याय कर रहे हो भरत। न ईश्वर, न प्रकृति और न समाज ही हमें किसी के साथ अन्याय करने का अधिकार देता है।

‘कभी मैं भी इनसे बहुत नाराज थी। मुझे लगता था कि तुम्हारे पिता की मृत्यु का कारण यही हैं, किन्तु तब मैं यह भूली हुई थी कि एक बार शम्बर से युद्ध में और दूसरी बार भयंकर बीमारी में तुम्हारे पिता के प्राणों की रक्षा इन्होंने ही की थी, वह छोटी बातें नहीं थीं; और भरत, श्रवण के अन्धे माता-पिता द्वारा महाराज को दिया हुआ श्राप भी याद करो और फिर सोचो कि क्या तुम्हारी माँ कैकेयी केवल एक निमित्त मात्र ही तो नहीं थीं?'

इतना कहकर कौशल्या थोड़ा रुकीं। भरत अभी भी कुछ नहीं बोले, बस उन्होंने भाई राम

की ओर देखा और दृष्टि झुका ली।

'मैं जानती हूँ भरत; तुम्हारे मन में अभी भी कुछ प्रश्न शेष होंगे,' कौशल्या ने कहा।

इस पर भरत ने आँखें उठाकर कौशल्या की ओर देखा और फिर नेत्र नीचे कर लिये।

'भरत, तुम्हें याद होगा कि राम के वनगमन के बाद तुम उन्हें मनाने और वापस अयोध्या लाने के लिये गये थे।'

'हाँ' भरत ने कहा।

'तब तुम्हारे साथ मैं भी थी और तुम्हारी माँ कैकेयी भी।'

'हाँ।'

'और जब चित्रकूट में हम, राम से मिले थे, तब क्या तुम्हें पता है कि कैकेयी, राम से एकान्त में भी मिली थीं।'

भरत ने इसका उत्तर नहीं दिया। तब कौशल्या ने कहा,

'शायद तुम्हें यह पता होगा, किन्तु क्या तुम्हें यह भी पता है कि तब कैकेयी, राम और सीता से मिलकर कितना फूट-फूटकर रोयी थीं, अपने को कितना कोसा था और उनसे कितनी अधिक क्षमा याचना की थी।'

भरत को इसका ज्ञान नहीं था। उन्होंने राम की ओर देखा।

'माँ ठीक कह रही हैं भरत।' राम ने कहा।

'और भरत, राम और सीता के लिये कैकेयी का वह प्रसंग उसी दिन समाप्त हो गया था। तुमने उनके मन में कैकेयी के प्रति आदर की भावना, कभी भी सुमित्रा या मेरे प्रति आदर की भावना से कम देखी क्या?'

'नहीं, पर वे राम और सीता हैं। सभी राम और सीता नहीं हो सकते।' भरत ने कहा।

'प्रयास तो कर सकते हैं न! और भरत, यह भी सोचो कि यदि राम, दण्डकारण्य नहीं जाते और वहाँ सीता का अपहरण नहीं होता तो राक्षसराज रावण तुम्हारे भाई के हाथों नहीं मरता, और फिर राम की, इस रघुकुल की और अयोध्या के शौर्य की जो पताका इस धरती पर फहरा रही है, वह कैसे होती? आज अयोध्या का जो विशाल साम्राज्य खड़ा है, क्या वह वैसा ही होता?'

'अगर भाई के हाथों रावण नहीं मरता, तो शायद नहीं, किन्तु माँ! उस वनवास और अपहरण के कारण मेरी देवी माँ जैसी भाभी ने सारे जीवन बहुत अधिक सन्ताप भोगे हैं। हमारा साम्राज्य भले ही छोटा रहता, पर उन्हें इतनी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती तो कितना अच्छा रहता।'

'भरत, तुम्हारे मन में सीता और राम के लिये जो सम्मान है वह स्तुत्य है; और उनके लिये सम्मान तुम्हारे मन में ही नहीं अयोध्या के इस साम्राज्य और इसके बाहर के भी पता नहीं कितने लोगों के मन में है और युगों तक रहेगा।

'भरत, क्या तुम्हें लगता है कि सीता इतनी नासमझ थीं कि उन्होंने किसी हिरन को सोने का समझ लिया होगा! अगर उन्हें सोने या इस तरह की चीजों से सचमुच इतना ही मोह होता तो उन्होंने राजमहल छोड़कर अपने पति के साथ खुशी-खुशी वन-वन भटकने का चुनाव नहीं किया होता।'

'वनवास उन्हें नहीं दिया गया था; और भरत क्या तुम्हें अपने भाई की बुद्धि पर भी भरोसा नहीं है?'

क्या तुम्हें लगता है कि राम ने इस बात पर विश्वास कर लिया होगा कि कोई जीता-

जागता हिरन हाड़-मांस का नहीं, सोने का हो सकता है और फिर वह उन्हें दूर तक दौड़ाता रहा और वे दौड़ते रहे।

'नहीं, न भाभी को किसी तरह का कोई लोभ था और न ही भाई ने ही सोने के हिरन को सच समझा होगा।'

'तो क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि कहीं इसके पीछे विधि ही तो इस प्रकार रावण की मृत्यु का ताना-बाना नहीं बुन रही थी।'

'हो सकता है।'

'और भरत, तुम तो अयोध्या के राजकुमार हो; तुमने चौदह वर्षों तक अयोध्या पर शासन किया है और आज भी अयोध्या के शासन में तुम्हारी सक्रिय भागीदारी है। क्या अयोध्या ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिये कभी युद्ध किये हैं?'

'किन्तु अपने राज्य की सीमाओं की सुरक्षा तो राज्य की जिम्मेदारी बनती ही है न!'

'हाँ।'

'तो रावण जिस तरह अपने साम्राज्य के विस्तार में लगा था और भारत के दक्षिण में दण्डकारण्य तक आ गया था, उसमें हम और कितने दिनों तक यहाँ अयोध्या में सुरक्षित रह सकते थे?'

'अधिक दिनों तक नहीं।'

'तो युद्ध अपनी धरती के स्थान पर दुश्मन की धरती पर लड़ा गया, क्या यह उपलब्धि नहीं है?'

'है।'

'क्या इसके लिये तुम अपनी माँ कैकेयी का आभार नहीं मानोगे भरत?' कौशल्या की बातों के इस मोड़ पर भरत अवाक रह गये।

'किन्तु भाई, भाभी और लक्ष्मण द्वारा वन में उठाये गये कष्टों की बात हम छोड़ देंगे क्या?' उन्होंने कहा।

'भरत, तुम्हारे मन को उनके द्वारा वन में उठाये कष्टों की बात बहुत सालती है न?'

'हाँ।'

'किन्तु सोचो कि यदि रावण अपने सामाज्य का विस्तार करते हुए यहाँ तक आ पहुँचता तो वह कितना और शक्तिशाली हो चुका होता। क्या उस समय उसे हराना और फिर लंका से भी अपदस्थ करना वन में उठाये गये कष्ट से कम कष्टकारक होता?'

'नहीं, किन्तु भाभी का इतने कष्ट उठाना और इस प्रकार जाना तो नहीं होता।'

'यह तुम कैसे कह सकते हो भरत? उस भयंकर और बड़े युद्ध में किसकी किस रूप में बलि होती, यह कौन जानता है; और युद्ध में बलियाँ तो होती ही हैं, इसके बिना तो कोई युद्ध होता ही नहीं।' कौशल्या ने कहा।

इतना कहने के साथ ही उन्हें लगा कि शायद उनके स्वर में कहीं कुछ उत्तेजना थी और वह कुछ तीखा हो गया था, अतः वे कुछ देर के लिए शान्त हो गयीं। उन्होंने प्रयास कर अपने मन को शान्त किया और बोलीं।

'भरत, तुम मुझे राम से कम प्रिय नहीं हो।'

'मैं जानता हूँ माँ।'

‘भरत, राम के वनवास से जुड़ा एक तथ्य और है, जिस पर शायद हममें से किसी का ध्यान नहीं गया है!'

‘क्या?' भरत ने कहा।

‘राम ने अयोध्या जैसे साम्राज्य का राजा बनने से पूर्व चौदह वर्ष जो वन में बिताये, उसमें उन्होंने स्वयं चलकर उत्तर से दक्षिण तक का भारत देखा, ऋषियों-मुनियों से लेकर समाज के सबसे निचले और गरीब वर्ग के लोगों से भी बहुत करीब से मिले; उनका जीवन देखा, समझा। यह अनुभव छोटी बात नहीं है।

जनता से इस तरह से जुड़ने का अवसर कितने राजाओं को मिल पाता है। शायद उनका यही अनुभव था। जिससे कि वह ऐसा शासन स्थापित कर सके हैं जिससे कमजोर वर्ग के पास भी वही नागरिक अधिकार हैं, जो समाज के स्थापित और ताकतवर वर्ग के पास हैं, और अमीर और गरीब के मध्य का अन्तर भी कम हुआ है।

यह राम-राज्य आने वाली पीढ़ियों के लिये एक आदर्श राज्य की परिकल्पना बनकर रहेगा और इसमें उनके द्वारा वनों में बिताये चौदह वर्षों का योगदान बहुत बड़ा होगा; तो भरत इस राम-राज्य का श्रेय कैकेयी को भी नहीं मिलना चाहिये क्या?' कौशल्या ने कहा,

कौशल्या की इस बात से भरत एक बार फिर वहीं आ गये जहाँ पर तब थे, जब थोड़ी देर पहले राम-रावण युद्ध को अयोध्या की धरती पर नहीं दुश्मन की धरती पर होने का श्रेय उन्होंने कैकेयी को देने की बात कही थी।

उन्हें कौशल्या की सभी बातें सच लग रही थीं और मन से अपनी माँ कैकेयी के प्रति आक्रोश भी कम हो रहा था, किन्तु फिर भी शायद कहीं कुछ शेष तो था ही। उन्होंने कौशल्या के प्रश्न का इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया।

इतनी देर से कौशल्या जिस तरह से कैकेयी का पक्ष रख रही थीं, उससे कैकेयी संकोच से गड़ी जा रही थीं, यह कौशल्या के संज्ञान में था। उन्होंने भरत से कहा।

‘भरत, अपनी माँ की ओर देखो! वे अपनी थोड़ी सी प्रशंसा से ही संकोच से गड़ी जा रही हैं; इस विनम्रता को तुम क्या कहोगे?'

राम अभी तक चुपचाप सुन रहे थे। कौशल्या ने उन्हें भी वार्तालाप में शामिल करने के उद्देश्य से इस बार उन्हें इंगित कर कहा।

‘राम, समुद्र मन्थन में अमृत भी निकला था और विष भी; अमृत पीने के लिये सभी लालायित थे, किन्तु विष पीने के लिये केवल शिव आगे आये। तुम्हारी राम-कथा की रचना में कारण बनी कैकेयी ने सारी बुराई, सारी बदनामी अपने नाम कर ली है। नीलकण्ठ भगवान शिव की तरह अकेले ही सारा विष पीने वाली कैकेयी श्रद्धा की पात्र ही तो हुई।'

‘हम केवल मात्र शरीर ही तो नहीं हैं। यह शरीर जिन पाँच तत्वों, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाश से मिल कर बना है वे भी केवल साधन ही तो हैं। साध्य तक पहुँचने के लिये हमें दृष्टा होना पड़ेगा।'

‘किन्तु केवल दृष्टा होने से हम अन्यायों का प्रतिकार कैसे कर सकेंगे?'

‘तुम ठीक कह रहे हो भरत! अन्याय का प्रतिकार हमें पूरी शक्ति से करना चाहिये, किन्तु उसमें भी दृष्टा होना बाधक नहीं हैं। हमारे एक हाथ में दण्ड हो यह उचित ही है, किन्तु दूसरे में सरलता और क्षमा भी रहनी चाहिए, साथ ही सुख और दुःख में निर्विकार हों यह तो ठीक

है, किन्तु सही और गलत का अन्तर विश्वासों के आधार पर नहीं, भीतर से उठने वाले स्वर के आधार पर करते रहना चाहिए।'

'आप ठीक कहती हैं माँ!'

'तो क्या मैं तुम्हें अपनी बात समझा पायी भरत?'

'मैं आपकी बातों को पूरी तरह समझ गया हूँ, यह तो मैं इन्हें अपने जीवन में उतारने के बाद ही कह पाऊँगा, किन्तु हाँ, मैं इनसे पूरी तरह सहमत तो हूँ ही।'

'तो फिर मेरा एक अनुरोध मानोगे क्या?'

'माँ, आप कहें मैं आपके किसी भी आदेश के अनुपालन के लिये प्रतिबद्ध हूँ।'

'आदेश नहीं भरत! आदेश मस्तिष्क से माना जाता है, किन्तु अनुरोध हृदय से स्वीकार किया जाता है।'

'माँ आप जो भी कहेंगी मैं उसे हृदय से स्वीकार करूँगा।'

'तुम्हारी माँ को तुमसे सम्मान और प्यार मिले, यह उनका अधिकार है, उन्हें इससे वञ्चित मत करो। उनके प्रति तुम्हारे मन में जो भी आक्रोश है, उसे त्याग दो, भरत!' कौशल्या ने कहा।

भरत को कौशल्या से कुछ इसी तरह की बात की आशा थी। सच तो यह है कि कौशल्या के इतनी देर तक समझाने के बाद उनके मन से कैकेयी के प्रति आक्रोश समाप्त हो चुका था, और फिर एक वर्षों पुरानी बात को पकड़े रहने का कोई औचित्य भी नहीं लग रहा था; किन्तु वर्षों से कैकेयी के प्रति जिस व्यवहार के वे आदी हो चुके थे, वह कौशल्या की बात पर कोई प्रतिक्रिया देने से उन्हें रोक रहा था।

इस वार्तालाप में काफी समय हो चुका था। सुमित्रा को कौशल्या द्वारा कैकेयी, भरत और राम को बुलाने की बात मालूम हो चुकी थी। इतना लम्बा वार्तालाप कुछ अप्रत्याशित सा था।

सुमित्रा को लगने लगा, अवश्य ही कुछ विशेष होगा। वे चिन्तित हो उठीं और कौशल्या के कक्ष के बाहर जाकर उन्होंने आवाज दी,

'दीदी, मैं आ सकती हूँ क्या?'

'हाँ, आओ सुमित्रा! मैं तुम्हें बुलाने ही वाली थी।' कौशल्या ने कहा। सुमित्रा आयीं और एक ओर बैठ गयीं, फिर बोलीं,

'सब कुशल तो है? सूर्य देवता आसमान में कितना ऊपर चढ़ आये हैं और आप लोग सुबह से यहीं बैठे हैं; मैं ही नहीं, बहुएं भी बहुत चिंतित हो रही हैं।'

कौशल्या हँसीं।

'ऐसा कुछ नहीं है, बस बातें करना अच्छा लग रहा है, इसलिये बैठे हैं।'

भरत अभी भी चुप थे। कौशल्या ने बात के सिरे को फिर से पकड़ा, भरत की ओर देखा और कहा,

'एक बात और है भरत! जितना मैंने सीता को जाना है, उससे मैं यह कह सकती हूँ कि यदि आज वह होतीं तो तुमसे यही कहतीं कि तुम्हारे मन में अपनी माँ के प्रति सम्मान और प्रेम के अतिरिक्त अगर कुछ है तो वह अनुचित है।'

थोड़ा रुककर कौशल्या ने फिर कहा।

'भरत, वैसे तो किसी का कुछ भी पता नहीं, किन्तु फिर भी मैं और कैकेयी उम्र के

अन्तिम पड़ावों पर तो हैं ही; हमारी कोई भी साँस कभी भी अन्तिम हो सकती है।'

'माँ, आप जो भी कहना चाहती हैं कहें, किन्तु ऐसा कुछ भी मत कहें...' भरत ने कहा।

'भरत, मैं जो कहना चाहती थी वह कह चुकी हूँ।'

'ठीक है।' कहकर भरत ने कैकेयी के चरणों को स्पर्श करते हुए कहा,

'माँ, मुझे क्षमा कर दो।'

कैकेयी ने भरत को सीने से लगा लिया और 'बेटा' कहकर रो पड़ीं। उनका हृदय इतनी जोर से धड़कने लगा कि भरत को अपने सीने में उसका एहसास होने लगा। वे भी रो पड़े। एक माँ को उसका वर्षों से खोया बेटा मिल गया था। वह एक अवर्णनीय दृश्य था।

सब कुछ जैसे थम-सा गया था। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। सभी के मन में जैसे कोई आँधी ठहरी हुई थी। कुछ देर बाद कैकेयी और भरत थोड़ा सामान्य हुए तो राम और सुमित्रा को भी ऐसा लगा जैसे वे कहीं से लौट आये हों।

'मैंने महाराज दशरथ को दिया अपना वचन पूरा कर दिया है।' कौशल्या ने कहा और फिर नेत्र बन्द कर लिये।

'क्या था वह वचन?' राम ने पूछा किन्तु कौशल्या ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उसी तरह नेत्र बन्द किये बैठी रहीं।

'दीदी कैकेयी का आदर और सम्मान वैसा ही बना रहेगा, शायद यही रहा होगा?' सुमित्रा ने कहा।

देर हो गयी थी, किन्तु कौशल्या किसी भी बात पर कोई प्रतिक्रिया न देकर अभी भी उसी प्रकार नेत्र बन्द किये निश्चल बैठी थीं। सभी उनके नेत्र खोलने की प्रतीक्षा करने लगे, किन्तु जब काफी देर तक न उन्होंने नेत्र खोले और न उनके शरीर में कोई हरकत हुई तो राम ने 'माँ' कहते हुए उनके कन्धे को छूकर धीरे से हिलाया।

इससे कौशल्या वैसे ही बैठे-बैठे लुढ़क गयीं। सभी अवाक रह गये। वे प्राण छोड़ चुकी थीं। संभवत: वे अपने जीवन का अन्तिम कार्य सफलता-पूर्वक कर चुकी थीं और उनकी अब और कुछ देखने या सुनने की इच्छा शेष नहीं रह गयी थी।

'नहीं, आप ऐसा नहीं कर सकतीं, दीदी! आप मुझे अकेला छोड़कर यूँ नहीं जा सकतीं... नहीं, नहीं, नहीं .....,' कैकेयी जोर से विलाप करने लगीं।

उनकी आवाज सुनकर बहुयें व दूसरे लोग भी आ गये। सभी रो रहे थे; राम को छोड़कर।

वे बहुत बुरी तरह से चौंक उठे थे। 'यह क्या हो गया' उन्होंने स्वयं से कहा। अचानक सीने में कुछ दर्द सा लगा और इसके साथ ही नेत्र आसुओं से भर गये। पीड़ा भरी हलकी सी मुस्कान उनके अधरों पर आई। अधर थोड़े तिरछे हुए। उन्होंने सिर को हलके से झटका और सीने पर हाथ रख कर कुछ हटकर कक्ष की दीवार के सहारे खड़े हो गये। सिर को दीवार से टिकाकर नेत्र बन्द कर लिये।

गहरा अन्धकार दिखाई देने लगा और फिर कुछ देर में ही कौशल्या के वात्सल्य भरे कितने ही चित्र आने लगे। उन्हें लग रहा था, जैसे उनकी साँसों की गति भी कुछ धीमी हो गयी है।

लोगों के आने-जाने की आवाजें, कुछ पीड़ा भरी बातें और कुछ विलाप के स्वर सुनाई दे रहे थे। सीने में दर्द अभी भी लग रहा था। पता नहीं किस बात को लेकर राम ने मन ही मन एक लम्बा सा 'नहीं' कहा, और नेत्र खोल दिये और धीरे से स्वयं से ही बोले।

‘एक दर्द और सही।’

इसके बाद उन्होंने उँगलियों को मस्तक पर और फिर मुँह पर फिराया। सामान्य होने का प्रयास किया और आगे बढ़कर कैकेयी को ढांढस बँधाने लगे।

12. और कैकेयी

भरत का व्यवहार कैकेयी के प्रति एकदम बदल गया था। वे उनका बहुत अधिक ध्यान रखने लगे थे। अभी तक उनका कैकेयी के प्रति जो व्यवहार था, वे शायद उसका प्रायश्चित करना चाहते थे।

भरत के इस प्रेमपूर्ण व्यवहार से कैकेयी का अपराध बोध का भाव, जो पहले के भरत के कटु व्यवहार के कारण बराबर बना रहता था, अब बहुत कम हो चुका था।

कौशल्या को गये कुछ समय हो गया था।

कैकेयी को अक्सर लगता था, पति गये, देवी जैसी बहू सीता और बड़ी बहन सी कौशल्या भी गयीं। वे बहुत अधिक अकेलापन महसूस करने लगी थीं। दशरथ के प्रयाण के बाद से ही वे बहुत कम बोलने लगी थीं, फिर सीता का इस तरह जाना और फिर कौशल्या का भी प्रयाण। कैकेयी अब और अधिक खामोश रहने लगीं।

कैकेयी का इस तरह खामोश रहना सभी को कष्ट दे रहा था, किन्तु भरत की पत्नी माण्डवी इससे कुछ अधिक ही परेशान थीं। उन्होंने भरत से इसकी चर्चा की। माँ की यह चुप्पी उन्हें भी बहुत अधिक साल रही थी।

सच तो यह था कि, यद्यपि भरत के अत्यधिक आदर और प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण कैकेयी को काफी मानसिक शान्ति मिली थी, पर कौशल्या के इस अचानक प्रयाण ने उनकी मानसिक वेदना को बहुत अधिक बढ़ा दिया था।

वे कभी-कभी अवसाद जैसी स्थिति में आ जाती थीं, इस कारण माण्डवी और भरत उनसे बातें करने और उनके साथ अधिक समय बिताने का प्रयास करने लगे थे।

माण्डवी, कैकेयी को लेकर बहुत चिन्तित रहने लगी थीं। एक दिन कैकेयी जब अकेले बैठी कुछ सोच रही थीं, माण्डवी उनके पास पहुँच गयीं और बोलीं,

'माँ, मैं आपके पास बैठ सकती हूँ?'

'आओ बेटी, बैठो।' कैकेयी ने कहा।

माण्डवी उनके पास बैठ गयीं, फिर बोलीं।

'माँ, आप इतना चुप क्यों रहती हैं, किसी बात की परेशानी है क्या?'

'नहीं परेशानी कैसी, सब ठीक तो है।'

'फिर आप इतना अधिक चुप क्यों रहती हैं?'

'बस यूँ ही, क्या बोलूँ?' कैकेयी ने कहा।

'मुझे लगता है आप कुछ सोचती रहती हैं।'

'हाँ सोचती तो हूँ। सोचती हूँ, बहन कौशल्या कैसे योगियों की तरह चली गई। न कोई कष्ट, न कोई औषधि न किसी से कोई सेवा। मृत्यु के बाद भी चेहरे पर किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं। लगता है जैसे कोई दैवीय शक्ति स्वयं आकर उन्हें हाथ पकड़कर ले गई हो। जिस

तरह शान्ति से सारा जीवन जिया, उसी तरह शान्ति से मृत्यु का वरण भी किया। माण्डवी, वे कितनी पुण्यात्मा रही होंगी।'

'हाँ, सचमुच।'

'माण्डवी, कभी-कभी मैं सोचती हूँ, मेरा क्या होगा।'

'माँ, इस तरह की बातें क्यों सोचती हैं आप?'

'बस यूँ ही बेटी, कभी-कभी ये बात मन में आ ही जाती है।'

'नहीं माँ, ये सब मत सोचा कीजिये। जो कुछ हमारे हाथ में है ही नहीं उसके बारे में चिन्ता करने से क्या होगा,' माण्डवी ने कहा।

'तुम ठीक कहती हो, माण्डवी।' कैकेयी ने कहा।

माण्डवी कुछ देर और बैठीं। बातों में कौशल्या और सीता ही छायी रहीं। शाम ढलने लगी तो माण्डवी ने कहा,

'माँ, चलूँ?'

'हाँ बेटी, तुझे काम होंगे।'

माण्डवी के जाने के बाद कैकेयी कुछ देर वहीं बैठी रहीं, फिर उठकर अपने शयन-कक्ष में जाकर बिस्तर पर बैठ गयीं। नेत्र बन्द किये और ईश्वर का ध्यान करने की कोशिश करने लगीं। वे कब तक इसी तरह बैठी रहीं यह उन्हें भी पता नहीं चला। सेविका की आवाज सुनकर उन्होंने नेत्र खोले।

'रानी माँ! रात हो रही है, भोजन-कक्ष में सभी लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'मुझे भूख नहीं है बेटी; सबसे कह दो, मैं इस समय कुछ भी नहीं खाऊँगी।'

सेविका अपने लिये 'बेटी' सम्बोधन सुनकर निहाल हो उठी।

'माँ, चलकर थोड़ा सा ही ले लीजिये; यूँ खाली पेट सोना ठीक नहीं होगा।' उसने कहा, फिर अपने द्वारा कैकेयी के लिये 'रानी माँ' के स्थान पर केवल 'माँ' सम्बोधन से वह संकोच से गड़ गयी यद्यपि अपने लिये' बेटी' शब्द सुनकर यह सम्बोधन उसके मुँह से अनजाने ही निकल गया था।

'नहीं बेटी, मेरा मन बिलकुल भी नहीं है, तुम सब लोगों से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।'

सेविका, कैकेयी की बात सुनकर एक पल के लिये खड़ी रह गयी। अपने लिये एक बार पुनः 'बेटी' सम्बोधन और खाना न खाने के लिये सबसे क्षमा प्रार्थना करना। क्या हो गया है रानी माँ को, उसने सोचा। कैकेयी ने उसे खड़े देखा, तो बोलीं,

'अब जाओ बेटी, मैं कुछ देर और ऐसे ही बैठना चाहती हूँ।

'माँ, जाती हूँ। उसने कहा। उसके जाने के बाद कैकेयी फिर उसी तरह ध्यान में बैठ गयीं।

सेविका ने भोजन-कक्ष में जाकर कैकेयी की बात बतायी। उन्हें कुछ भी लेने की इच्छा नहीं है, यह तो ठीक, किन्तु इसके लिये सबसे क्षमा-प्रार्थना की बात किसी को भी समझ में नहीं आयी।

भरत उन तक जाने के लिये उठने का उपक्रम करने लगे तो माण्डवी ने उन्हें रोककर, सभी को कैकेयी के साथ कुछ देर पहले ही हुई बातें बतायीं, फिर कहा।

उस समय उनकी जो मनःस्थिति थी उसको देखते हुए, मुझे लगता है कि अभी उनकी

शान्ति भंग न करना ही उचित रहेगा।'

माण्डवी की इस बात पर भरत पुनः अपने आसन पर बैठ गये।

आप भोजन समाप्त कर लें, उसके बाद मैं जाकर देखती हूँ।'

'मैं भी साथ चलूँगा।' भरत ने कहा।

'ठीक है।' माण्डवी ने कहा। असल में वे सोच रही थीं कि यदि भरत भोजन छोड़कर उठ गये तो कैकेयी की मनःस्थिति देखकर पता नहीं फिर भोजन के लिये बैठें या नहीं।

भोजन समाप्त हुआ तो, भरत ने माण्डवी से कहा,

'चलो।'

'चलिये।' माण्डवी ने कहा।

जब वे कैकेयी के कक्ष में पहुँचे,

वे नेत्र बन्द किये बहुत ही शान्त मुद्रा में बैठी हुई थीं। आहट पाकर उन्होंने नेत्र खोल दिये। भरत और माण्डवी को देख कर वे धीरे से हँसीं।

'आओ, बैठो,' कहकर उन्होंने आसन की ओर इशारा किया।

'माँ, आप भोजन करने क्यों नहीं आयीं?' भरत ने कहा।

'बस यूँ ही! पता नहीं क्यों कुछ भी लेने की इच्छा नहीं है। तुमने भोजन कर लिया?'

'हाँ,' भरत ने कहा।

'और माण्डवी तुमने?' कैकेयी ने कहा।

'कर लूँगी।'

'नहीं, जाओ पहले तुम भी भोजन करके आओ, फिर हम कुछ देर साथ-साथ बैठेंगे।'

माण्डवी उठकर खड़ी हो गयीं, बोलीं- 'माँ, आप कुछ तो ले लेतीं।'

'नहीं, मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है।'

'अच्छा थोड़ा सा दूध ही सही...' माण्डवी ने कहा।

'नहीं कुछ भी नहीं।' कैकेयी ने कहा, किन्तु भरत ने हलके से माण्डवी को कुछ संकेत किया, जिसका अर्थ था कि जाओ दूध ले आना। माण्डवी चली गयीं और भोजन समाप्त कर एक पात्र में दूध ले कर आ गयीं।

'माँ, थोड़ा सा दूध है, इसे पी लीजिये।' उन्होंने कहा, साथ ही भरत ने भी आग्रह किया।

'इच्छा तो नहीं है पर तुम लोग मानोगे नहीं।' कैकेयी हँसीं और दूध का पात्र लेकर धीरे-धीरे पीने लगीं। माण्डवी खड़ी ही थीं। दूध समाप्त करने के बाद कैकेयी ने पात्र एक ओर रखकर माण्डवी से कहा-

'बैठो न, खड़ी क्यों हो।'

माण्डवी बैठ गयीं। कैकेयी ने भरत और माण्डवी दोनों से कहा,

'दूर नहीं, तुम लोग मेरे पास आकर बैठो।'

दोनों पास आकर बैठे तो कैकेयी ने अपने एक हाथ में भरत का, दूसरे हाथ में माण्डवी का हाथ थामकर उनकी ओर देखा।'

'कुछ कहना चाहती हैं क्या माँ?' भरत ने कहा।

'हाँ,'

'क्या?'

‘पता नहीं।' कहकर कैकेयी हँस पड़ीं।

कुछ देर तक वे ऐसे ही शान्त बैठे रहे। रात गहरा रही थी। कैकेयी ने कहा,

‘भरत, माण्डवी, रात हो रही है, जाओ तुम लोग भी जाकर सो जाओ।'

‘आप अपने कक्ष में जा कर सो जायें, मैं यहीं सो जाऊँगी।' माण्डवी ने भरत से कहा।

‘नहीं माण्डवी, परेशान होने की आवश्यकता नहीं है, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।' कैकेयी ने कहा और भरत और माण्डवी को बहुत आग्रह कर उनके कक्ष में भेज दिया, इसके बाद कैकेयी फिर शान्त बैठ गयीं।

* * *

कैकेयी बहुत देर तक ध्यान में बैठी रहीं और रात अधिक होने के बाद वहीं बिस्तर पर लेट गयीं। शाम को माण्डवी के साथ हुई बातें अभी भी उनके मस्तिष्क में घूम रही थीं, पर शरीर और मन दोनों से निढाल कैकेयी को नींद आने लगी थी। कुछ देर में ही वे सपनों में डूबने लगीं।

उन्होंने देखा कि उड़ती हुई सी कौशल्या उनके कक्ष की खिड़की से आकर उनके बिस्तर से कुछ दूर, जमीन से ऊपर हवा में खड़ी हैं। कैकेयी को लगा, वे कहीं बहुत दूर से आ रही हैं। कैकेयी बिस्तर पर लेटी थीं, ठकर बैठ गयीं। बिस्तर की ओर संकेत कर बोलीं - ‘दीदी आप! आइये बैठिये।'

कौशल्या पास आ गयीं पर बैठीं नहीं। वैसे ही हवा में ही ठहरी रहीं।

‘अकेले ही आयी हैं?'कैकेयी ने पूछा।

‘नहीं, सीता भी तो साथ में हैं।'

‘कहाँ?'

‘ये क्या हैं।' कौशल्या ने अपने बगल में संकेत किया।

कैकेयी ने देखा, सचमुच उनके बगल में सीता भी थीं। वे कभी सीता को और कभी कौशल्या को देखने लगीं।

‘कैकेयी!' कौशल्या ने आवाज दी।

‘हाँ'

‘दुखी सी और इतना अधिक चुप सी क्यों रहती हो तुम? क्या भरत के व्यवहार में अब भी कोई कमी है?'

‘जब से आपने समझाया है, उसका व्यवहार बिल्कुल बदल गया है; अब तो वह मुझे बहुत प्रेम और सम्मान देता है।'

‘फिर?'

‘पहले बहुत बोलती थी मैं, उसका दुष्परिणाम देख लिया; अब लगता है कि चुप रहना ही ठीक है।'

‘और दुखी सी क्यों रहती हो?'

इस प्रश्न पर कैकेयी हँसीं, बोलीं,

‘दु:ख सहते-सहते शायद मन को दुखी सा रहने की आदत पड़ गयी है; फिर आपके जाने के बाद से आया यह अकेलापन बहुत चुभता भी तो है।'

‘मैं तुम्हारा मन जानती हूँ कैकेयी, पर परेशान मत हो, ऐसा हमेशा ही नहीं रहेगा।'

‘हाँ, हमेशा एक सा कहाँ रहता है।’ कहकर वैâकेयी ने एक गहरी साँस ली। कुछ पलों

के लिये जैसे कुछ बहुत पुरानी बातें उनके मष्तिष्क में कौंध सी गयीं, किन्तु उन्होंने स्वयं को सँभाला, धीरे से मुस्करायीं और फिर सीता की ओर देखकर बोलीं -

'सीते, तुम कुछ नहीं बोलोगी? अब भी मुझसे नाराज हो क्या?'

'माँ, मैं आपसे नाराज तो कभी भी नहीं थी; तब भी नहीं जब प्रभु राम और मुझे वन जाना था, पर बस सोच नहीं पा रही थी कि क्या बोलूँ।'

'बेटी, क्या पास आओगी? क्या मैं तुम्हें एक बार सीने से लगा सकती हूँ?'

'आयी माँ।' कह कर सीता, कैकेयी के पास आयीं और उनके सीने से लग गयीं। सीता को सीने से लगाकर कैकेयी भाव-विह्वल हो गयीं। 'बेटी, मेरी बेटी' कहते हुये वे बार-बार सीता की पीठ सहलाने लगीं। कुछ देर बाद जब कैकेयी ने उन्हें छोड़ा तो वे उड़ती हुई सी फिर कौशल्या के पीछे जाकर खड़ी हो गयीं।

'कैकेयी, चलें?' कौशल्या ने कहा।

'इतना शीघ्र।'

'हाँ जाना तो है ही, किन्तु एक बात कहना चाहती हूँ।'

'क्या?'

'किसी ने भी पता नहीं कब से तुम्हें हँसते नहीं देखा है और यदि मैं भूलती नहीं हूँ तो राम के वन गमन के बाद महाराज दशरथ के प्रयाण के बाद से ही और भरत के अपने ननिहाल से लौटने के बाद अयोध्या का राज्य न स्वीकारने के बाद से तो बिल्कुल भी नहीं।'

'हँसती तो हूँ दीदी, अपनी बुद्धि और अपने दुर्भाग्य पर।' .

'तुम्हारी इस तरह की बातों से मुझे कष्ट होता है, कैकेयी। यदि तुम छोटी बच्ची होती तो मैं तुम्हें इतना गुदगुदाती कि तुम हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती।'

कौशल्या की इस बात पर कैकेयी भी हँस पड़ीं और सीता भी।

'हाँ यही तो मैं देखना चाहती थी। तुम बहुत सुन्दर हो और तुम्हारी हँसी उससे भी अधिक सुन्दर है।'

'यादों में कैद होना वर्तमान ही नहीं नष्ट करता, भविष्य के मार्ग भी बन्द कर देता है। जीवन है तो पीड़ायें भी होंगी, कैकेयी, किन्तु उनके प्रेम में पड़ने से बचो। अच्छा अब मैं चलती हूँ।'

इतना कहकर कौशल्या जैसे आयी थीं वैसे ही सीता के साथ उड़ती हुई खिड़की से बाहर चली गयीं।

'काश! मैं भी इसी प्रकार उड़कर कहीं भी जा पाती।' कैकेयी के मन में आया। वे कौशल्या और सीता को जाते हुए देखती रहीं और फिर नेत्र बन्द कर लिये। उन्हें लगने लगा जैसे जीवन के इस सफर में चलते-चलते वे बहुत थक गयी हैं। उन्हें याद आया कि वह समय भी था जब वे ऊर्जा से भरी रहती थीं।

उन्हें अपने मायके केकय में अपने पिता आनव के यहाँ बिताये दिन और फिर महाराज दशरथ और असुरपति शम्बर के मध्य हुए युद्ध में अपना रण-कौशल याद आ गया।

* * *

केकय नरेश आनव, जनमेजय के वंश से थे और केकय एक समृद्ध और शक्तिशाली राज्य था। कैकेयी इन्हीं की पुत्री थीं। सबसे छोटी, अति सुन्दर और नाना गुणों से सम्पन्न,

कैकेयी अपने पिता की बहुत दुलारी बेटी थीं। आनव ने उन्हें अश्व-संचालन, रथ-संचालन और शस्त्र-संचालन की शिक्षा भी दी थी और वे उन्हें अपने साथ आखेट या युद्धों में भी ले जाते थे।

दशरथ की पत्नियों में कौशल्या, कोशल नरेश भानुमान की पुत्री थीं और सुमित्रा मगध की राजकुमारी थीं।

प्रौढ़ होते दशरथ के कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने जब केकय-नरेश आनव से कैकेयी का हाथ माँगा तो आनव ने अपनी लाड़ली बेटी के पुत्र को ही अयोध्या का राज्य देने की शर्त रख दी जिसे दशरथ ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

कैकेयी के युद्ध-कौशल से प्रभावित दशरथ भी उन्हें अपने साथ युद्धों में ले जाते थे। रावण की पत्नी मन्दोदरी की बड़ी बहन के पति, असुर-पति शम्बर के साथ हुए युद्ध में भी वे कैकेयी को साथ ले गये थे। इस युद्ध में शम्बर का साथ देने के लिये प्रकम्पन, वज्रपंजर, विकटाक्ष जैसे छत्तीस असुर राजा भी आये थे और दशरथ की ओर से पांचाल नरेश दिवोदास के अतिरिक्त अन्य बहुत से पराक्रमी राजा भी थे।

दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आने के बाद, शंखों की ध्वनि और नगाड़ों पर चोटें शुरू हो गयीं। युद्ध प्रारम्भ हुआ तो दोनों ओर से बाणों की विकट वर्षा होने लगी। दशरथ के प्रहारों से विकल शम्बर की मदद के लिये बहुत से असुर-पति आगे आकर उन पर चारों ओर से आक्रमण करने लगे। उनका धनुष और रथ दोनों ही इस आक्रमण में टूट गये। दशरथ पैदल ही तलवार लेकर लड़ने लगे, किन्तु शीघ्र ही उनका शरीर घावों से छलनी हो गया।

कैकेयी, दशरथ का रथ चला रही थीं। रथ टूटने के बाद कैकेयी धनुष बाण लेकर उनकी रक्षा में आगे आयीं। उनके द्वारा की गयी विकट बाण-वर्षा से घायल होकर असुर मैदान छोड़ने लगे, तब शम्बर स्वयं सामने आया।

कैकेयी रणचण्डी बनी हुई थीं। उनका चेहरा क्रोध और तेज से लाल हो रहा था। शम्बर, कैकेयी के इस रूप को देखकर अचम्भित रह गया।

'भद्रे, क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?' उसने कैकेयी से कहा।

'परिचय जानकर क्या करोगे शम्बर, युद्ध करो; मृत्यु हर रूप में मृत्यु ही होती है।'

'मैं स्त्रियों पर वार नहीं करता, आप जो भी हों मेरा मार्ग छोड़ दें।'

'मैं तुम्हारी इस बात की प्रशंसा करती हूँ; वीर पुरुष निश्चित ही स्त्रियों का सम्मान करते हैं, किन्तु इस समय मैं स्त्री या पुरुष नहीं, तुम्हारी शत्रु हूँ।'

तभी किसी ने शम्बर को बताया कि वे दशरथ की पत्नी और केकय-नरेश आनव की पुत्री कैकेयी हैं। इस पर शम्बर ने कहा।

'महारानी, मैंने आपके बारे में जैसा सुन रखा था, वैसा ही देख भी रहा हूँ। आपके रणकौशल से किसी को भी ईर्ष्या हो सकती है, किन्तु मेरी आपसे एक बार फिर प्रार्थना है कि आप मेरा मार्ग छोड़ दें। मैं किसी भी स्त्री पर शस्त्र नहीं उठाना चाहता।'

'शम्बर, स्त्री या पुरुष की बात भूलकर युद्ध करो, मैं इस समय तुम्हारा काल बनकर उपस्थित हुई हूँ।'

शम्बर इस बात पर हँसा। कैकेयी को शम्बर की यह हँसी खल गयी।

'शम्बर, मत भूलो कि शुम्भ और निशुम्भ का वध करने वाली माँ दुर्गा भी स्त्री ही हैं।' कैकेयी ने कहा और दशरथ की रक्षा करते हुए पुन: बहुत तेज बाण वर्षा शुरू कर दी।

अपनी ओर आते कैकेयी के बाणों को शम्बर अपने बाणों से काटता हुआ अपना बचाव तो करता रहा, किन्तु सीधे कैकेयी को लक्ष्य कर बाण छोड़ने से बचता भी रहा। कैकेयी ने इसे समझा।

'वार करो शम्बर! अन्यथा मृत्यु तुमसे बहुत दूर नहीं होगी।' बिजली जैसी चपलता और अत्यधिक वीरता से लड़ती हुई कैकेयी ने कहा।

'महारानी, मृत्यु भी निश्चित है और उसका समय भी; मैं उसकी चिन्ता नहीं करता।' शम्बर ने कहा।

युद्ध अपने चरम पर था। तभी महाराज दिवोदास, दशरथ और कैकेयी का संकट देखकर तीव्रता से आगे आये। उन्होंने लगभग मूर्छित से दशरथ का हाथ पकड़कर अपने रथ में खींच लिया। कैकेयी यह देख रही थीं। वे शीघ्रता से उनके पास आयीं। दिवोदास ने अपने रथ की कमान कैकेयी को दे दी और वे स्वयं कूदकर दूसरे रथ में सवार होकर शम्बर से युद्ध करने लगे। इस युद्ध में दिवोदास के हाथों शम्बर मारा गया।

कैकेयी ने एक हाथ से घोड़ों की रास पकड़ी और दूसरे हाथ से खड्ग चलाते, विकट साहस, कौशल, वीरता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करते हुए दशरथ को युद्ध-भूमि से निकाल ले गयीं।

युद्ध-भूमि से दूर जाने के बाद, कैकेयी अपने रथ को पानी के स्रोत के पास ले गयीं। उससे जल लिया, उसको मंत्र-पूरित किया, और उसी मंत्र-पूरित जल से दशरथ का मुख धोया, कुछ पिलाया और फिर उनके शरीर पर उसी जल के छींटे मारे। दशरथ की मूर्छा कम होने लगी और घावों की पीड़ा भी। उन्हें कुछ होश आते ही कैकेयी सावधानी-पूर्वक उन्हें अयोध्या वापस ले आयीं।

* * *

सब कुछ याद आने के बाद कैकेयी को अपने अन्दर आत्म-विश्वास का सञ्चार होता सा लगा। वे उठकर बैठ गयीं।

विचारों का प्रवाह-सा उनके अन्दर चल रहा था। 'अब क्या पाना शेष है? कुछ भी तो नहीं।' और छोड़ने लायक कुछ है भी तो नहीं मेरे पास' उन्होंने सोचा। फिर पता नहीं क्या मन में आया और वे धीरे से हँस पड़ीं।

'कुछ पाना भी शेष नहीं है, कुछ छोड़ना भी नहीं हैं, फिर भी मैं हूँ। और हूँ तो क्या, नहीं हूँ तो क्या?' उन्होंने स्वयं से कहा।

कैकेयी नेत्र बन्दकर, सिर को थोड़ा ऊँचा करके बैठ गयीं और अनन्त के अनुभव का प्रयास करने लगीं। उनके ध्यान में आया, जैसे वे एक वृक्ष देख रही हैं, जिसपर एक पक्षी बैठा हुआ वृक्ष में खिले एक सुन्दर सफेद फूल को देख रहा है। 'यदि यह फूल लाल होता तो शायद और भी सुन्दर लगता। पक्षी ने सोचा। फिर आस-पास देखा। पेड़ में काँटे भी थे। 'फूल को लाल करना है, सोचते हुए पक्षी ने एक बड़े से काँटे पर अपना सीना रखकर दबाया। काँटा उसके सीने में धँस गया और खून निकलने लगा, जो पेड़ से होता हुआ फूल को लाल करने लगा। पक्षी फूल को देख रहा था। थोड़ी देर में फूल पूरा लाल हो गया।'

'हाँ, अब यह कितना अच्छा लग रहा है' उसने सोचा और सीने में भयंकर पीड़ा लिये लुढ़क गया।

कैकेयी के शरीर में रोमांच सा हुआ और नेत्र खुल गये। उन्होंनें लम्बी साँस भरी और एक हलकी सी हँसी एक बार फिर उनके होंठों पर तैर गयी।

उन्होंने हाथ जोड़े, नेत्र बन्द किये और ईश्वर की अनुभूति में डूबने का प्रयास करने लगीं।

'हे ईश्वर, अन्तिम सत्य तुम्हीं हो। न तुम्हें झुठलाया जा सकता है और न सिद्ध किया जा सकता है!' उन्होंने सोचा।

'तुम ऐसी धारणा हो जिसके पार कुछ सोचा भी नहीं जा सकता है।'

'तुम्हें पाने के लिये विचारों के कितने-कितने जंगलों में भटकी हूँ मैं, अकेली और असहाय।

सारे गुणों से युक्त फिर भी निर्गुण, कोई भी परिवर्तन करने में समर्थ, किन्तु अपरिवर्तनीय, अकेले किन्तु असंख्य।

तुम्हें पाना तो आनन्द है ही, तुम्हें पाने का सच्चा प्रयास भी कोई छोटा आनन्द नहीं है।

और यदि यह कभी, कहीं और किसी भी क्षण हो सकता है, तो हे ईश्वर, मेरे इन क्षणों को वही एक क्षण बना दो।

तुम पवित्र शान्ति और कभी न समाप्त होने वाला आनन्द हो। मुझे इसी पवित्र शान्ति और आनन्द से भरने की अनुभूति दो। मुझे इतना जीवन्त और लयपूर्ण बना दो कि मैं तुम्हारे होने की अनुभूति से भर जाऊँ। हे ईश्वर आओ, आओ और मेरे हाथों को थाम लो।'

इतना कहकर कैकेयी रुकीं 'ईश्वर, अब मेरे पास कहने के लिये और कुछ भी शेष नहीं है।' उन्होंने मन ही मन कहा और उन्हें लगने लगा, जैसे वे किसी हलके प्रकाश से घिरी हुई हैं और आनन्द से भर उठी हैं। उन्हें लगने लगा जैसे उनका मस्तक और हथेलियाँ कुछ अधिक संवेदनशील हो उठी हैं और कुछ ऐसा लग रहा है, जिसे कहा नहीं जा सकता।

'ईश्वर तुम आ ही गये न!' उनके अधरों से निकला और वे धीरे से हँस पड़ीं।

कुछ देर में ही उन्हें लगने लगा, जैसे वे ईश्वर के आशीष से भर उठी हैं और भीतर जो कुछ घट रहा है उसे केवल और केवल महसूस किया जा सकता है।

उन्हें अपने चारों ओर शीतलता, पवित्रता और गाम्भीर्य पसरा हुआ लगा और साथ ही स्पर्श न की जा सकने वाली कोमलता और विलक्षण भीनी सुगन्ध का भान भी हुआ। बहुत अच्छा लग रहा था। कुछ नींद सी भी लगने लगी थी। वे अनायास ही बिस्तर पर लुढ़ककर लेट गयीं।

अद्भुत स्थिति थी। आनन्द से भरी हुई। ऐसी अनुभूति पहले कभी नहीं हुई थी। वे अभिभूत हो उठीं। और यह क्या! उन्हें लगा जैसे वे हवा में तैर रही हैं और नीचे लेटे स्वयं के शरीर को देख भी रही हैं। 'अरे मैं तो उड़ सकती हूँ।' उन्हें लगा। 'बिलकुल वैसे ही जैसे कौशल्या और सीता आई थीं।' वे आश्चर्य से भर उठीं और फिर हवा में तैरती हुई कमरे से बाहर आ गयीं। उन्हें लग रहा था कि कमरे में महसूस हुआ प्रकाश अभी भी उनके चारों ओर था।

उन्होंने बाहर आकर देखा, रात नहीं थी। भोर सा वातावरण था। नीचे वृक्ष, उनकी छायायें और ऊपर अद्भुत नीलापन लिये आसमान। सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था।

वे मात्र इच्छा करने से ऊपर की ओर उठने लगीं। पूर्णरूप से मुक्त और निर्भार कैकेयी, ऊँचे, बहुत ऊँचे पहुँच गयीं, किन्तु वह दिव्य और सौम्य प्रकाश बराबर उनके साथ था। धीरे-धीरे अपनेपन का भान खोने लगा और लगने लगा जैसे वे कुछ नहीं मात्र उसी प्रकाश का भाग हैं।

सुबह हुए देर हो गयी थी। राजमहल के लोग अपने अपने कार्यों में व्यस्त हो चुके थे, पर आश्चर्य ही था कि रोज बहुत सुबह ही उठ जाने वाली कैकेयी अभी तक अपने कक्ष से बाहर नहीं आयी थीं। भरत और माण्डवी चिन्तित से उनके कक्ष में पहुँचे। कैकेयी अभी भी सो रही थीं। माण्डवी ने उनके पैर छूकर हिलाये, आवाज दी,

'माँ!' किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

भरत ने उनके चेहरे को स्पर्श कर अपनी ओर किया तो उनका सिर लुढ़क गया। वे जा चुकी थीं।

13. कुछ विविध

घर के बड़ों में सुमित्रा ही बची थीं। वही शेष थीं जो राम को 'राम' कहकर बुलाती थीं। 'तुम' कहकर बातें करतीं और स्नेह देती थीं। राम जब भी सुमित्रा के चरण-स्पर्श करते थे, उन्हें लगता था कि स्वयं उनके चरण- स्पर्श करने वाले और उनसे आशीर्वाद की अपेक्षा करने वाले तो बहुत हैं, पर वे जिन चरणों को छूकर आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं वे चरण बस यही हैं। राम उनका विशेष ध्यान रखने और यह प्रयास करने लगे थे, कि उन्हें अकेलेपन का अनुभव न हो, किन्तु सुमित्रा बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकीं। वे भी कौशल्या और कैकेयी के ही पथ पर चली गयीं।

* * *

केकय, जहाँ कैकेयी का मायका था। वहाँ से ऋषि अंगिरा के पुत्र महर्षि गार्ग्य, केकय के दूत बनकर आये थे। आज का पंजाब ही उस समय केकय था। कैकेयी के पिता का देहावसान हो चुका था और उनका पुत्र युधाजित वहाँ का राजा था। महर्षि गार्ग्य अपने साथ भेंट में बहुत से घोड़े, रत्न, व आभूषण इत्यादि उपहार में लेकर आये थे।

अयोध्या में जब उनके आने का समाचार पहुँचा तो राम ने भाइयों सहित आगे बढ़कर उनकी अगवानी की।

पंजाब के पश्चिम में, आज के अफगानिस्तान तक गन्धर्वों का राज्य था। यह प्रदेश गन्धर्व देश या गान्धार कहलाता था और सम्भवतः इसीलिये यहाँ के निवासी गन्धर्व कहलाते थे। वे अधिकतर लम्बे, उजले और मजबूत शरीर के होते थे। गन्धर्व बार-बार युधाजित पर आक्रमण कर रहे थे। ऋषि गार्ग्य, राजा युधाजित की ओर से, अयोध्या से गन्धर्वों के विरुद्ध सहायता का निवेदन लेकर आये थे।

राम ने बिना विलम्ब किये भरत को, उनके दोनों पुत्रों, तक्ष और पुष्कल के साथ एक बड़ी सेना लेकर युधाजित की सहायता के लिये भेजा। भरत की सहायता प्राप्त केकय नरेश युधाजित और गन्धर्वों में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में युधाजित मारे गये, किन्तु गन्धर्व बुरी तरह पराजित हुए। भरत ने गन्धर्वों के राज्य का विभाजन कर उसे अपने पुत्रों तक्ष और पुष्कल में बाँट दिया। भरत ने पाँच वर्षों तक वहीं रहकर उनके राज्यों को सुदृढ़ किया और फिर अयोध्या लौट आये।

तक्ष के राज्य में तक्षशिला और पुष्कल के राज्य में पुष्करावती नाम के दो नये नगर बसाकर उन्हें इन राज्यों की राजधानी बनाया गया। पुष्करावती ही इस समय पेशावर नाम से जानी जाती है।

शत्रुघ्न पहले ही राम के आदेश से राक्षसी प्रवृत्ति के लवणासुर को मारकर मधुपुर पर अधिकार कर चुके थे। कुछ समय बाद उन्होंने, उस राज्य के दो भाग कर उसे अपने पुत्रों, सुबाहु और शत्रुघाती में बाँट दिया। सुबाहु, मथुरा और शत्रुघाती विदिशा के राजा बने।

लक्ष्मण के पुत्रों के लिये राम ओर लक्ष्मण दोनों की इच्छा थी कि ऐसे स्थान का चयन किया जाय जो किसी अन्य राजा के क्षेत्र में न हो, ताकि किसी का राज्य न छीनना पड़े, कोई युद्ध न हो, किसी का रक्त न बहे, कोई आश्रम या घर न उजड़े। साथ ही वह स्थान सुन्दर और आरोग्य-वर्धक भी हो। इसके लिये हिमालय की गोद में बसा हुआ हिमाचल प्रदेश सभी को बहुत अच्छा लगा।

यहाँ पर उपयुक्त स्थानों का चुनाव कर अंगद के लिये अंगदीया और चन्द्रकेतु के लिये चन्द्रकान्ता नाम के नगर बसाये गये। दोनों ही स्थान अति सुन्दर और सुरक्षित थे। चन्द्रकेतु, किसी मल्ल के समान हष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली थे। इस कारण उनका राज्य 'मल्ल देश' भी कहलाया।

* * *

राम के मन में कभी-कभी उठता था कि उनके कार्य पूरे हो चुके हैं। माता-पिता, पत्नी सभी जा चुके हैं। पुत्र बड़े और समर्थ हैं। अयोध्या का साम्राज्य सुदृढ़ और सुस्थापित हो चुका है और राज्य में सुख और शान्ति है।

ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम वे जी चुके हैं, अब वानप्रस्थ का समय है। उन्हें सरयू का अपने जीवन में विशेष महत्व लगता था। वे सरयू का जल पीकर, उसके द्वारा सिंचित खेतों का अन्न खाकर और उसके किनारे खेल कर बड़े हुए थे।

कभी-कभी उन्हें याद आता था कि एक बार सरयू के किनारे बातों-बातों में उन्होंने सीता से कहा था कि सरयू उन्हें अपनी माँ जैसी लगती है। आज भी उन्हें लगता था कि वानप्रस्थ में भी वे सरयू से दूर नहीं जाना चाहेंगे और अपना शेष जीवन सरयू के किनारे ही किसी शान्त स्थान पर व्यतीत करना चाहेंगे।

भाइयों के पुत्र विभिन्न राज्यों में स्वतः ही स्थापित हो चुके थे। अपने पुत्रों के लिये और अयोध्या के राज्य के लिये उनके मन में था कि कभी तीनों भाइयों के साथ बैठकर ही इस सम्बन्ध में निर्णय करेंगे।

14. समय ही तो

महर्षि अतिबल के दूत बनकर एक तपस्वी आये हुए थे और राम से मिलना चाहते थे। राम के महल के बाहर लक्ष्मण उन्हें मिले।

'मुनिवर कैसे आना हुआ?' लक्ष्मण ने पूछा।

'मैं महर्षि अतिबल के दूत के रूप में श्रीराम के लिये उनका सन्देश लेकर आया हूँ।' तपस्वी ने उत्तर दिया।

'ठीक है, थोड़ी प्रतीक्षा करें, मैं उन्हें सूचना देकर आता हूँ।'

लक्ष्मण अन्दर गये और राम की अनुमति लेकर आये। तपस्वी अन्दर गये। राम ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और आसन दिया।

'मैं महर्षि अतिबल का दूत हूँ, उनका सन्देश लेकर आया हूँ।' तपस्वी ने कहा।

'मेरा सौभाग्य, कि महर्षि अतिबल ने मुझे स्मरण किया। कृपया बतलायें कि उन्होंने क्या सन्देश भेजा है।' राम बोले।

तपस्वी उत्तर देने के स्थान पर द्वार की ओर देखने लगे। राम को लगा वे कुछ कहना चाहते हैं किन्तु संकोच कर रहे हैं।

'कृपया अपनी बात निःसंकोच होकर कहें।' उन्होंने कहा।

'उनका सन्देश गोपनीय है, और केवल आप के लिये है।' तपस्वी बोले।

'यहाँ हम दोनों के अतिरिक्त कोई नहीं है।'

'किन्तु हमारे वार्तालाप के मध्य कोई आ तो सकता है।'

'ठीक है, मैं लक्ष्मण से कहता हूँ कि वे बिना मेरी अनुमति के, किसी को भी अन्दर नहीं आने दें।'

'ठहरिये महराज! महर्षि अतिबल ने कहा है कि यदि हमारे वार्तालाप के मध्य कोई आ जाये तो वह आपके द्वारा मृत्युदण्ड का भागी होगा। आपके द्वारा यह आश्वासन पाने के बाद ही मैं उनकी बात आप से कहूँ।'

तपस्वी की बात सुनकर राम अचम्भित हुए। इतनी कठिन शर्त। कैसा सन्देश होगा महर्षि का! वे सोच में पड़ गये। अचानक यदि कोई लक्ष्मण के रोकने पर भी आ ही जाता है तो वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं होगा, और वह उनके द्वारा वध किये जाने के योग्य नहीं हुआ तो?

'लगता है महाराज किसी सोच में हैं!' तपस्वी ने कहा।

'लक्ष्मण की अवज्ञा कर आने वाला व्यक्ति साधारण नहीं होगा। वह मेरे लिये अवध्य भी हो सकता है।

यदि ऋषियों की बात की अवज्ञा न करना मेरे संस्कारों में न होता तो मैं इस शर्त को स्पष्ट ही ठुकरा देता।' राम ने कहा।

'सोचें, यदि कोई ऋषि ही हठ करने लगे तो क्या हम उसका वध कर सकते हैं?' राम ने

पुनः कहा, वे जैसे भविष्य देख रहे थे।

'आप ठीक कहते हैं, किन्तु महर्षि अतिबल यही चाहते हैं।'

'मैं चाहता हूँ कि मेरी शंका उनके सामने रखते हुए आप उनसे एक बार पुनः अपनी शर्त पर विचार करने के लिये कहें।

'ठीक है, उनसे आपकी बात कहने के बाद मैं पुनः उपस्थित होऊँगा, अभी विदा लेता हूँ।'

'किन्तु थोड़ी देर ठहरिये, हमें अतिथि-सत्कार का अवसर तो दीजिये!'

'उसकी चिन्ता आप मत करें महाराज! मैं आप के व्यवहार से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ और यदि महर्षि तक आपकी बात पहुँचाने की शीघ्रता नहीं होती तो मैं अवश्य ही कुछ देर रुकता।' कहकर तपस्वी ने उस समय विदा ली।

तपस्वी गया, किन्तु राम के मन में एक बड़ा प्रश्न छोड़ गया। 'पता नहीं क्या सन्देश होगा' यह बात उनके मन से जा नहीं पा रही थी। मन कुछ आशंकाग्रस्त हो गया। 'अवश्य ही कुछ विशेष घटने वाला है' राम ने सोचा।

तपस्वी दूसरे दिन पुनः उपस्थित हुआ।

'आइये, विराजिये!' कहकर राम ने उनका स्वागत किया।

'महाराज, मैंने आपकी बात महर्षि से कही थी।' उसने आसन ग्रहण करने के साथ ही कहा।

'फिर? '

'उन्होंने कहा है कि वे समझ सकते हैं कि आपके महल में पहरे पर बैठे व्यक्ति की अवज्ञा कर अन्दर आ जाने वाला व्यक्ति अवध्य भी हो सकता है।'

'फिर,' राम ने पूछा।

'महर्षि ने कहा है कि इस स्थिति में पहरे पर बैठा व्यक्ति आपके द्वारा कठोरतम दण्ड का भागी होगा, यह वचन लेकर ही मैं आपको यह सन्देश दूँ।'

'यह किस तरह का सन्देश होगा?' राम ने सोचा, किन्तु महर्षि की अवज्ञा उनके लिये सम्भव नहीं थी।

'ठीक है।' उन्होंने कहा और लक्ष्मण को बुलाकर कहा।

'लक्ष्मण, द्वार पर जो भी हो उससे कह दो कि जब तक ये तपस्वी मेरे पास हैं कोई भी अन्दर नहीं आना चाहिए अन्यथा वह मेरे द्वारा कठोरतम दण्ड का भागी होगा।'

लक्ष्मण को लगा अवश्य ही कुछ विशेष है, अन्यथा राम इस तरह का आदेश नहीं देते। आने वाला व्यक्ति यदि विशिष्ट व्यक्ति हुआ तो वह द्वारपाल की अवज्ञा भी कर सकता है। ऐसे में राम और तपस्वी की बातों में व्यवधान तो होगा ही, निर्दोष द्वारपाल, कोई अति कठोर दण्ड पा जायेगा। 'मैं स्वयं ही राम के इस कार्य का सम्पादन करूँगा' उन्होंने सोचा और द्वारपाल को विदा कर स्वयं ही वहाँ पर खड़े हो गये।

उधर कक्ष में एकान्त हो जाने के बाद राम ने तपस्वी से कहा,

'महात्मा, अब आप अपनी बात निःसंकोच कह सकते हैं।'

'तो महाराज, मैं आपके लिये महर्षि अतिबल के सन्देश को उन्हीं के शब्दों मे दुहराता हूँ।

'ठीक है, कहें।' राम ने कहा।

'महाराज, उन्होंने कहा है कि 'प्रभु, आप जिस कार्य के लिये आये थे वह पूर्ण हो चुका

है।'

राम ने इस सन्देश को सुना तो किंचित आश्चर्य से भर उठे। पिछले कुछ दिनों से वे स्वयं भी जो सोच रहे थे, महर्षि ने भी वही बात उनसे कहलायी थी।

कितना अद्भुत संयोग है, उन्होंने सोचा। साथ ही अपने लिये महर्षि द्वारा 'प्रभु' सम्बोधन पर भी उन्हें आश्चर्य हुआ। 'वे साधारण मनुष्य नहीं, कोई अवतारी पुरुष हैं,' ऐसा वे अपने लिये अक्सर सुनते आये थे।

आज महर्षि के इस सन्देश से उन्हें लगा कि क्या सचमुच वे साधारण व्यक्ति नहीं, उससे कुछ इतर, कुछ विशेष हैं, और इस विचार से राम के अधरों पर मुस्कान दौड़ गयी।

राम को इस प्रकार मुस्कराते देख, तपस्वी आश्चर्य-चकित होकर राम के मुख को निहारने लगा।

'और क्या कहा है महर्षि ने?' राम ने पूछा।

'उन्होंने कहा है कि वे तो मात्र स्मरण करा रहे हैं, निर्णय तो आपको ही लेना है।'

'ठीक है।' राम ने कहा।

'प्रभु, मेरे लिये क्या आदेश है?' तपस्वी ने पूछा

राम कुछ कह पाते इसके पूर्व ही उन्हें, द्वार पर कुछ शोर सा लगा। वास्तव में महर्षि दुर्वासा आये हुये थे। वे तत्क्षण राम से मिलना चाहते थे और कुछ भी सुनने को तैयार ही नहीं थे।

लक्ष्मण द्वारा रोके जाने पर वे इतने अधिक क्रोधित हुए कि राम के पूरे परिवार को श्राप देने की बात करने लगे और तब लक्ष्मण ने निश्चय किया कि सारा परिवार, दुर्वासा का कोप-भाजन बने इसकी अपेक्षा अच्छा है कि वे अकेले ही राम का दण्ड भुगतें। वे चुप हो गये और महर्षि दुर्वासा, लक्ष्मण को हाथ से किनारे करते हुये अन्दर चले गये।

राम उन्हें देखकर चौंक उठे। शायद इन्हें मुझसे कोई अति आवश्यक-कार्य होगा' उन्होंने सोचा और प्रणाम करते हुए बोले।

'आइये महर्षि, कुशल तो है?'

'राम, मुझे बहुत भूख लगी है।'

'ठीक है महर्षि,' राम ने कहा किन्तु उन्हें यह बहुत अजीब सा लगा। अपनी भूख की बात वे बाहर लक्ष्मण से भी कह सकते थे और महर्षि को उनकी इच्छानुसार उत्तम भोजन ही दिया जाता।

दुर्वासा का यह व्यवहार उन्हें कुछ खटका, किन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं। वे भोजन कर चुके तो राम ने कहा,

'महर्षि, विश्राम करें।'

'नहीं' उन्होंने कहा और आशीर्वाद देकर चले गये। राम अचम्भित थे।

दुर्वासा के आने से राम और तपस्वी की बात बीच में ही रह गयी थी। तपस्वी ने पुनः पूछा,

'प्रभु मेरे लिये क्या आदेश है?'

'आप महर्षि से कहियेगा कि मैंने उनकी बात समझ ली है।'

'और दुर्वासा के आने की बात?' तपस्वी ने पूछा।

'दुर्वासा, आपके द्वारा महर्षि का सन्देश सुनाने के बाद आये थे, अतः उन्होंने वह बात

नहीं सुनी होगी, यह निश्चित है, फिर भी द्वार पर जो भी पहरे पर होगा वह मेरे द्वारा कठोरतम दण्ड पायेगा।'

'ठीक है प्रभु, मैं विदा लेता हूँ।' तपस्वी ने कहा।

'प्रणाम' राम ने कहा और तपस्वी ने विदा ली। तपस्वी के जाने के बाद राम ने लक्ष्मण को आवाज दी। लक्ष्मण आये।

'द्वार पर कौन था?' राम ने पूछा।

'मैं स्वयं।' लक्ष्मण ने उत्तर दिया।

लक्ष्मण का उत्तर सुनकर राम सोच में पड़ गये। दुर्वासा के आने पर जो शोर सुनाई दिया था उसमें भी उन्हें लक्ष्मण के स्वर का आभास हुआ था, किन्तु द्वारपाल वहाँ पर होगा ही नहीं और लक्ष्मण स्वयं ही पहरे पर होंगे यह उन्होंने नहीं सोचा था।

लक्ष्मण, जिन्होंने जीवन के हर मोड़ पर, छाया की तरह साथ दिया, सदा ही उनके ऊपर आई हर परेशानी को आगे बढ़कर अपने ऊपर लेने का प्रयास किया हो, उन्हें निरपराध ही कठोरतम दण्ड।

राम का हृदय काँप उठा।उन्हें लगा महर्षि अतिबल के सन्देश में छुपी बात को पूरा करने का समय सचमुच आ गया है। उनके सारे कार्य समाप्त हो चुके हैं। उन्हें लौटना होगा, किन्तु लक्ष्मण को वे क्या दण्ड दें। उन्हें दुर्वासा का इसी अवसर पर और इस भाँति आगमन भी विधि द्वारा नियंत्रित किया, किसी विशेष कार्य के सम्पादन का भाग-सा ही लगा।

'शायद यह संसार से उनके अन्तिम लगाव, जो स्वाभाविक ही लक्ष्मण से है, को भी तोड़ने का बहाना ही है' राम ने सोचा। उनके मन में यह भी चल रहा था कि यदि वे लक्ष्मण को दण्ड देने के अपने वचन का पालन नहीं करें तो?

उनकी कीर्ति पर धब्बा ही तो आयेगा, किन्तु क्या उनकी कीर्ति, लक्ष्मण से अधिक मूल्यवान है?

* * *

राम बहुत से प्रश्नों और शंकाओं से घिरे हुए थे। लक्ष्मण को पता था कि वे दण्ड के भागी हैं और उन्हें लग रहा था कि राम शीघ्र ही उन्हें कोई कठोर दण्ड देंगे, किन्तु उनका इतनी देर का मौन लक्ष्मण को विचलित करने लगा। वे समझ गये कि राम उन्हें दण्ड देने की बात से पीड़ा अनुभव कर रहे हैं और शायद कुछ असमंजस में भी हैं। यह पीड़ा उन्हें अपने वचन से विचलित न कर दे। उन्होंने मन में कुछ निश्चय किया और राम के पास आकर कहा,

'भइया।'

'हाँ,' कहते हुये राम मानों नींद से चौंक कर उठे।

'मैंने गलती की है और दण्ड का भागी हूँ; अपने वचन के पालन में हिचकिचाहट क्यों? यह रघुकुल की मर्यादा और आपकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है।'

'मेरी प्रतिष्ठा इतनी बड़ी नहीं है लक्ष्मण।'

'आपकी प्रतिष्ठा कितनी बड़ी है, यह मुझसे अधिक कौन जानता है?'

राम ने लक्ष्मण की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल धीरे से 'हूँ' किया और चल दिये।

'भइया!' लक्ष्मण ने आवाज दी।

‘क्या लक्ष्मण?' राम ने कहा।

‘कहीं आप इस कारण तो विचलित नहीं हैं कि आपके दण्ड देने से मुझे कष्ट होगा?'

‘लक्ष्मण, मेरे द्वारा तुम्हें दिया हुआ कोई भी दण्ड, जितना कष्ट तुम्हें देगा उससे कहीं अधिक कष्ट वह मुझे भी देगा।'

लक्ष्मण यह बात जानते थे और आज राम के मुख से यह सुनकर उन्हें अपने भाग्य पर गर्व सा हुआ। ‘वे, मुझे कितना अधिक चाहते हैं,' उन्होंने सोचा।

‘मुझे सोचने दो लक्ष्मण।' कहकर राम चल दिये और लक्ष्मण उन्हें देखते खड़े रह गये।

* * *

राम, ऋषि वशिष्ठ के साथ बैठे हुये थे। ऋषि उनके कुल पुरोहित भी थे। राम ने उनसे महर्षि अतिबल के भेजे हुए तपस्वी से हुई वार्ता का सारा वृत्तान्त और पहरे पर खड़े व्यक्ति के लिये दण्ड देने का अपना वचन भी बतलाया।

‘राम के आने के सभी कार्य पूर्ण हो चुके हैं और उनके जाने का समय निकट ही होगा' इसका आभास ऋषि वशिष्ठ को था, अतः महर्षि अतिबल की बात सुनकर उन्हें कुछ विशेष नहीं लगा, हाँ, यह जरूर लगा, कि अवश्य ही तपस्वी के वेष में काल आया था, किन्तु राम के हाथों लक्ष्मण के लिये दण्ड की बात उन्हें भी विचलित कर गयी।

ऋषि जानते थे कि लक्ष्मण को होने वाला कोई भी कष्ट राम को बहुत अधिक पीड़ा देगा; फिर यहाँ तो कठोरतम दण्ड की बात थी।

‘यह आने वाले कल की कितनी कठोर भूमिका हैं' ऋषि ने सोचा। ‘क्या कहें' यह वे निश्चित नहीं कर पा रहे थे। ऋषि के मौन ने राम की बेचैनी को बढ़ा दिया।

‘आप चुप क्यों है, ऋषिवर?’ राम ने कहा।

‘मैं महर्षि अतिबल की बात का निहितार्थ सोच रहा था। ’

‘ऋषिवर, क्या है उनकी बात में निहित अर्थ?'

‘राम, तुम्हारे जैसे व्यक्ति को मुझे किसी भी बात का अर्थ बताने की आवश्यकता नहीं है।'

‘फिर।'

‘मेरे मन में लक्ष्मण के दण्ड की बात है।'

‘हाँ, मुझे इस दुरुह स्थिति से निकालिये, ऋषिवर!'

‘राम, तुमने कठोरतम दण्ड की बात की है, और किसी भी मनुष्य के लिये कठोरतम दण्ड तो प्राणदण्ड ही होता है।'

महर्षि की बात सुनकर राम के हृदय में बहुत जोर से ‘धक' सा हुआ और उनके मुख का रंग बदल गया।

‘लक्ष्मण के लिये प्राणदण्ड' उन्होंने स्वयं से कहा। इसके साथ ही उनके सीने में साँस कुछ थम सी गयी, नेत्र कुछ और चौड़े हो गये और दृष्टि किसी आसमान की खोज में महल की छत पर टिक गयी।

महर्षि ने इसे देखा, और पुकारा

‘राम!'

राम ने दृष्टि महल की छत से हटायी और ओंठों को आपस में दबाया। उनके दाहिने हाथ

की उँगलियों से स्वतः ही एक ढीली मुट्ठी सी बन गयी। 'हूँ' की ध्वनि के साथ उन्होंने निःश्वास छोड़ी। महर्षि ने देखा, उनका चेहरा एकदम सपाट और भाव शून्य सा हो रहा था।

'जी महर्षि!' उन्होंने कहा।

'लेकिन लक्ष्मण के लिये तुमसे प्राणदण्ड पाना कठोरतम दण्ड नहीं होगा।'

'क्यों ऋषिवर?' राम ने कहा। 'क्या इससे भी कठोर कोई और दण्ड होगा' उन्होंने सोचा।

'क्योंकि लक्ष्मण के मन में तुम्हारे लिये श्रद्धा और स्नेह इतना अधिक है कि तुम्हारे लिये या तुम्हारे आदेश से प्राणों का त्याग करना उन्हें दण्ड नहीं सौभाग्य जैसा लगेगा।'

'फिर?'

'तुम्हारे द्वारा उनका त्याग, उनके लिये प्राण-दण्ड से बड़ा दण्ड होगा।'

'ओह,' कहकर राम ने जैसे शान्ति की साँस ली। उन्हें लगा, लक्ष्मण का त्याग उनके लिये भी बहुत बड़ा दण्ड होगा, किन्तु शायद यह करना ही पड़ेगा। लक्ष्मण से बिछड़ने की पीड़ा उनके मुख पर तैर गयी।

ऋषि ने इसे देखा। राम की पीड़ा भी समझी और साथ ही उचित परामर्श देने की अपनी विवशता भी।

'अन्य कोई उपाय?' राम ने पूछा।

'मेरी दृष्टि में तो नहीं है।' कहते हुए ऋषि वशिष्ठ ने राम से विदा माँगी।

राम उन्हें छोड़ने बाहर तक आये। उनको प्रणाम तो वे हमेशा ही करते थे, किन्तु आज उनके चरणों को हाथ लगाकर कुछ देर रुके और जब ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद देने के लिये हाथ उठाया तो राम ने उनका वह हाथ पकड़कर अपने सिर पर रख लिया।

'क्या हुआ?' महर्षि ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'मैं तुम्हारी पीड़ा समझ सकता हूँ राम! धैर्य रखना और हाँ, मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है।'

राम ने कुछ कहा नहीं, बस कुछ देर तक उनका हाथ और पकड़े रहे। एक बार पुनः झुककर उनके चरण स्पर्श किये, फिर वहीं विचार-मग्न मुद्रा में खड़े ऋषि को जाते देखते रहे और कुछ देर बाद बहुत बोझिल कदमों से धीरे-धीरे चलते हुए महल में लौट आये।

* * *

राम महल में आये तो उनकी अति गम्भीर मुद्रा देखकर किसी को भी उनसे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। लक्ष्मण के भी चले जाने के बाद जीवन में शून्य कितना और गहरा हो जायेगा। मेरे द्वारा त्याग दिये जाने के बाद लक्ष्मण कहाँ जायेंगे? उर्मिला का क्या होगा? क्या लक्ष्मण उसे भी अपने साथ ले जायेंगे? लक्ष्मण इस राज्य को त्यागकर किसी वन को चले जायेंगे या अयोध्या के अतिरिक्त किसी और राज्य में जायेंगे? कहीं वे अपने प्राण ही तो नहीं त्याग देंगे?

राम के मन में प्रश्न पर प्रश्न उठ रहे थे। उर्मिला के भविष्य की चिन्ता भी उन्हें मथे डाल रही थी। उन्हें लग रहा था कि लक्ष्मण यदि उर्मिला को भी अपने साथ ले जायें तो ही ठीक होगा, अन्यथा उर्मिला यहाँ अकेले रह नहीं पायेंगी।

शंकाओं और प्रश्नों का सिलसिला उनके मस्तिष्क में चलता ही जा रहा था, किन्तु 'धर्म तो निभाना ही पड़ेगा' यह सोचते हुए उन्होंने लक्ष्मण को बुलवाया।

लक्ष्मण आये और उनके सामने खड़े हो गये। राम ने उन्हें बुलाकर अपने बहुत ही निकट बैठाकर उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया।

लक्ष्मण, मैंने कभी स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं की थी कि मुझे तुमको दण्ड देना पड़ेगा।' उन्होंने कहा।

'किसी की गलती के लिये आप उसे दण्ड दें, इसमें गलत क्या हैं? राजधर्म रिश्तों से ऊपर होता है। आप निःसंकोच होकर मुझे मेरा दण्ड सुनायें, और मेरा हृदय से यह मानना है कि रघुकुल की मर्यादा और आपकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये एक नहीं सौ लक्ष्मण भी न्योछावर हो जायें तो बुरा नहीं है।'

राम ने लक्ष्मण की बात सुनी, किन्तु कुछ बोले नहीं। मौन ही पृथ्वी की ओर देखते रहे।

'बोलिये भइया, आप इतने चुप क्यों हैं?' लक्ष्मण ने कहा।

'लक्ष्मण, मुझे तुम्हारा परित्याग करना होगा!' राम ने कहा।

'क्या?' लक्ष्मण को इस बात की बिल्कुल भी आशा नहीं थी। यह सुनकर उन्हें ऐसा लगा जैसे उन पर बिजली गिर पड़ी हो।

'लक्ष्मण हाँ, मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ और यही तुम्हारा दण्ड है।'

'आप मुझे प्राण-दण्ड क्यों नहीं देते?'

'मृत्यु एक दिन सभी को अलग कर देती है। उस पर हमारा कोई बस नहीं है; वह मजबूरी है, किन्तु जीवित रहते अलग होना कुछ लोगों के लिये उससे भी बड़ा दण्ड होता है और हम उन्हीं कुछ लोगों में से ही तो हैं लक्ष्मण।'

'हाँ, आप से अलग होना तो निश्चित ही मेरे लिये सबसे बड़ा दण्ड है।'

'है न! और दुर्भाग्यवश मैं तुमको कठोरतम दण्ड देने का वचन ही तो दे चुका हूँ।' कहकर राम, लक्ष्मण की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। अन्दर की पीड़ा लक्ष्मण के चेहरे पर उभर आयी। ऐसा लग रहा था जैसे वे कुछ कहना चाहकर भी कुछ न कह पा रहे हों।

'शरीरों पर ही मत जाना, लक्ष्मण! हम केवल यह शरीर ही नहीं हैं और केवल दृष्टिकोण का अन्तर ही हमारी सुख और दुःख की अनुभूतियों में भी अन्तर ले आता है। तुम्हारा मन तो अत्यन्त निर्मल है; कुछ खोने के दुःख का नहीं लक्ष्मण, अपितु मुक्ति की अनुभूति का प्रयास क्यों नहीं करते।'

'आपसे अलग होने को मुक्ति की अनुभूति कैसे मान पाऊँगा मैं?'

'शरीरों से थोड़ा परे होकर सोचोगे तो मेरी बात तुम्हारी समझ में आ जायेगी। मैं स्वयं भी ऐसा ही करने का प्रयास कर रहा हूँ।'

'सफलता मिली क्या?' लक्ष्मण ने पूछा।

राम ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, बस ओठों को दबाकर लक्ष्मण की ओर देखा। लक्ष्मण ने राम की आँखें पढ़ीं, उनके चेहरे का भाव देखा और बोले,

'मैं समझ गया।' इसके बाद कुछ देर मौन छाया रहा। फिर लक्ष्मण उठे और राम के चरण-स्पर्श करने के लिये झुके। 'ये चरण मुझे फिर नहीं मिलेंगे' उनके मन में आया और फिर उन्होंने अपना मस्तक ही राम के चरणों में रख दिया।

'अन्तिम बार आशीर्वाद दे दें!' उन्होंने कहा।

राम ने लक्ष्मण को उठाया और गले से लगा लिया। कुछ देर तक वे ऐसे ही खड़े रहे।

ऐसा लगता था जैसे वे एक दूसरे से अलग होना ही नहीं चाहते। फिर वे अलग हुए तो लक्ष्मण मुड़े और धीमे, बोझिल कदमों से चलते हुए कक्ष से बाहर निकल गये।

राम उन्हें जाते हुये देखते रहे। कुछ देर पहले हुई बातों का असर था कि दोनों ने ही अपने को बहुत अधिक सँभाल लिया था, किन्तु फिर भी दोनों ओर लाल और आँसुओं से भरे हुए नेत्र थे।

राम हुआ मैं,
पीड़ायें फिर भी होती हैं,
आँखों में आँसू भी,
जन्म लिया करते हैं,
ओंठ भींचकर कितना दर्द,
पियेगा कोई!

15. प्रयाण की ओर

लक्ष्मण महल से बाहर आकर खड़े हो गये। उनके मुख से लग रहा था कि वे किसी गम्भीर चिन्तन में हैं। शायद वे यह सोच रहे थे कि किस ओर जायें।

उर्मिला की याद आयी। उनका क्या होगा? यह बात मन में आयी और फिर बरबस वे अपने आवास की ओर उनसे मिलने के लिये चल पड़े। वहाँ जाकर उर्मिला से क्या कहेंगे? उन्हें कैसे समझायेंगे? यह वे सोच नहीं पा रहे थे।

लक्ष्मण को पता था कि उर्मिला साथ चलने का आग्रह करेंगी और किसी भी तरह उनके बिना रहने को राजी नहीं होंगी। चलते-चलते वे एक बार पुनः ठिठके।

उन्होंने अपने लिये भी अभी कुछ तय नहीं किया था। राम ने जो कुछ समझाया था, वह उन्हें याद आ रहा था फिर भी...। और जीवन निरर्थक ही लग रहा था।

क्या होगा राम के बिना जीकर? बचपन से आज तक वे कभी भी राम से अलग नहीं रहे थे। जब से उन्होंने होश संभाला था तब से आज तक हमेशा उन्हें लगता रहा कि उन्हें यह शरीर राम की सेवा के लिये ही मिला है। राम उनके बड़े भाई ही नहीं थे, वे उनके आदर्श और आराध्य भी थे।

लक्ष्मण को ध्यान था कि राम ने कहा था, हम केवल शरीर ही नहीं हैं। उन्होंने मुक्ति की अनुभूति के प्रयास की बात की थी। लक्ष्मण को लगा कि राम से दूर होने में उन्हें किसी भी तरह की मुक्ति का बोध होना कठिन है।

यह उनके लिये सम्भव ही नहीं हैं, किन्तु शरीर से ही मुक्ति की बात यदि सोची जाये तो...। वे असमंजस में थे, और मन में उर्मिला का प्रश्न फिर उठा। लक्ष्मण को याद आया कि जब वे राम और सीता के साथ चौदह वर्षो के लिये वन को जा रहे थे, तब कम से कम समझाने के लिये यह तो था कि वापस आ जायेंगे, अभी तो वे यह भी नहीं कह सकते थे।

उर्मिला ने वे चौदह वर्ष कैसे बिताये होंगे, कितनी भी पीड़ा झेली होगी, इसका अनुमान भी कठिन है, किन्तु एक तसल्ली तो रही होगी कि मैं अपने कर्तव्य-पालन से बँधा हुआ ही उन्हें छोड़कर वन गया हूँ, अतः उन्हें भी सहयोग करना चाहिये और वह उन्होंने पूरे मन से किया भी; किन्तु आज क्या वह यह समझ सकेंगी कि मैं अपने भाई से अलग होकर जी नहीं सकता, इसलिये उन्हें तड़पने के लिये छोड़े जा रहा हूँ।

लक्ष्मण को लगा कि वे उर्मिला के प्रति अपराध कर रहे हैं।

राम के बिना जी नहीं पाना उनकी अपनी समस्या थी, किन्तु उसका मूल्य बार-बार उर्मिला को चुकाना पड़ रहा था।

वे यह भी तय नहीं कर पा रहे थे कि उन्हें अन्तिम विदाई के लिये उर्मिला के पास जाना चाहिये या नहीं। वे वहाँ जाकर क्या कहेंगे उर्मिला से? 'मैं प्राण त्यागने जा रहा हूँ।' यह वे कह नहीं सकेंगे, क्योंकि इसके बाद उर्मिला की जो दशा होगी उसकी बात सोचकर भी उनका मन

हिला जा रहा था।

क्या करें, यह तय करना मुश्किल हो रहा था, किन्तु कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि वे उर्मिला के पास मिलने तो जायेंगे, पर अपने जाने के विषय में कुछ कहेंगे नहीं, सामान्य बने रहेंगे। यद्यपि यह भी छल होगा, किन्तु बिना मिले जाना तो उर्मिला के साथ घोर अन्याय होगा।

भारी मन लिये लक्ष्मण, उर्मिला के पास पहुँचे तो यद्यपि वे सामान्य दिखाई देने का पूरा प्रयास कर रहे थे, किन्तु अन्दर के संघर्ष के चिन्ह कहीं न कहीं मुख पर आ ही गये थे।

'आप कुछ परेशान हैं क्या?' उर्मिला का यह पहला प्रश्न ही लक्ष्मण को परेशान कर गया। सामान्य दिखने के प्रयास में वे हँसे,

'नही तो!' उन्होंने कहा। उर्मिला को उनकी हँसी भी कुछ बनावटी सी लगी। उन्होंने लक्ष्मण की ओर देखा, बोलीं,

'पर...'

'पर क्या?'

'मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि आप कुछ परेशान अवश्य हैं, अन्यथा यह आपके घर लौटने का समय तो नहीं है।'

लक्ष्मण फिर हँसे।

'कहीं जा रहा था, कुछ प्यास सी लगी; घर पास था, सोचा चलो घर चल कर ही पानी पी लेते हैं।'

उर्मिला को लक्ष्मण की यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। केवल पानी पीने के लिये वे अपना कार्य छोड़कर कभी घर नहीं आये थे, फिर भी वे उठीं, बोलीं-

'अभी लायी।'

उर्मिला के चेहरे और बातों से लक्ष्मण समझ गये कि उन्हें उनकी बातें समझ में नहीं आ रही हैं और वे असहज हो उठी हैं।

'तुम मेरी बहुत अधिक चिन्ता करती हो न, इसलिये तुम्हें ऐसा लग रहा होगा।' उन्होंने कहा।

लक्ष्मण की यह बात उर्मिला को फिर रोज के उनके व्यवहार से हट कर लगी। उन्होंने होंठो को तिरछा कर सिर को ऐसे झटका जैसे कुछ समझ में नहीं आ रहा हो और पानी लेने चली गयीं। वे लौटीं तो साथ में कुछ खाने के लिये भी था, किन्तु लक्ष्मण ने केवल पानी ही लिया।

'कुछ थोड़ा सा ले लेते।' उर्मिला ने आग्रह किया।

'आँ..., हाँ...' कहकर लक्ष्मण ने मिठाई का एक छोटा सा टुकड़ा उठाकर मुँह में रखा, फिर उर्मिला का हाथ थामा और बोले,

'उर्मिला, तुम मेरा कितना ख्याल रखती हो।'

'हूँ!' उर्मिला ने लक्ष्मण की ओर भौंहे सिकोड़कर देखा।

'और मैं तुम्हें ढंग से समय भी नहीं दे पाता।'

'अच्छा, तो दिया कीजिये।' उर्मिला ने उनकी ओर देखकर कहा।

'उर्मिले, यदि मैं गीत लिख सकता तो तुम्हारी अनुभूतियों से भरा एक खूबसूरत सा गीत लिखता।'

‘सच!'

‘लोग कहते हैं सौन्दर्य और सद्गुणों में रिश्ता होता है।'

‘अच्छा!'

‘वह रिश्ता तुम हो उर्मिले! सद्गुण तुम्हारे अन्दर घर बनाकर रहते हैं और सौन्दर्य तुम्हारे भीतर और बाहर बिखरा पड़ा है।'

‘हूँ ... आप ठीक तो हैं?' उर्मिला ने कहा और लक्ष्मण के मुख की ओर देखा।

‘हाँ, क्यों, मुझे क्या हुआ है?'

‘यह तो मैं नहीं बता सकती, पर कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है।’

‘नहीं, कुछ नहीं है।'

‘आप बताना नहीं चाहते, किन्तु कुछ तो है।'

लक्ष्मण समझ गये कि उर्मिला को उनका सारा व्यवहार सामान्य नहीं लग रहा है।

‘नहीं कुछ नहीं है।' उन्होंने कहा।

‘अच्छा चलें।' कहकर वे वापस जाने लगे। उर्मिला आशंका से ग्रस्त थीं, बोलीं,

‘थोड़ा ठहर कर जाते।'

लक्ष्मण ठहर गये। उन्हें ध्यान आया, राम ने कहा था ‘शरीरों पर ही मत जाना लक्ष्मण, हम केवल शरीर ही नहीं हैं।’

उन्होंने उर्मिला की ओर देखा, एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री शरीर सामने था। उन्होंने उस ओर से दृष्टि हटायी, सिर झुकाकर अपने शरीर की ओर देखा और फिर अनायास ही मुख से राम के बोले हुए शब्द निकल पड़े।

‘शरीरों पर मत जाना उर्मिला, हम केवल शरीर ही नहीं हैं।'

उर्मिला को अचानक कहे लक्ष्मण के इस कथन पर आश्चर्य हुआ।

‘अर्थात?' उन्होंने कहा।

लक्ष्मण के अन्दर जैसे वैराग्य जाग उठा था; बोले,

‘शरीर से आगे भी देखना।'

‘आगे कहाँ तक?' उर्मिला लक्ष्मण की इन बातों से हैरान सी लगीं।

‘शरीर से आगे मन और उससे भी आगे आत्मा; मेरा शरीर कहीं भी रहे, मन हमेशा तुम्हारे पास ही रहता है।'

‘जानती हूँ, किन्तु आत्मा की बात से क्या अर्थ है आपका?

‘शरीर तो नश्वर है न! हमारी तो आत्माएँ भी एक हैं।'

‘इस तरह की बातें क्यों कर रहे हैं आप? ‘उर्मिला ने कहा और वातावरण की गम्भीरता कम करने के लिये, मुस्कराकर आगे आयीं और लक्ष्मण का हाथ थामकर बोलीं,

‘मैं इन बड़ी-बड़ी बातों में नहीं पड़ती। आप मेरे हैं यही मेरे लिए सबसे बड़ा ज्ञान है, पर आज आप इस तरह की बातें कर ही क्यों रहे हैं?'

‘कुछ नहीं बस ऐसे ही।' कहकर लक्ष्मण ने हँसने का प्रयास किया और मुड़कर चल दिये।

उनके कदम बोझिल से थे और चाल सामान्य नहीं थी। उर्मिला उन्हें जाते हुए देखती रहीं। लक्ष्मण की हँसी भी उन्हें स्वाभाविक नहीं लगी थी। वे चिन्तित सी बैठ गयीं। ‘कुछ तो

अवश्य हैं' उनहोंने मन ही मन कहा और फिर आशंकाओं से घिरी वे ईश्वर का स्मरण करने लगीं।

* * *

लक्ष्मण बाहर निकलकर सरयू की ओर चल पड़े और तट पर पहुँच कर सरयू के किनारे-किनारे अनिश्चय की सी स्थिति में चलने लगे। मस्तिष्क में पता नहीं कितने विचार, कितने दृश्य घूम रहे थे।

दुर्वासा बार-बार न चाहते हुए भी दिमाग में आ जा रहे थे। हमेशा क्रोधित और श्राप देने को तत्पर। ऐसे लोगों को भी ऋषि कहना चाहिये क्या!

पता नहीं कितनी बातें और कितने दृश्य मस्तिष्क में आ रहे थे। राम सदा से उनके विचारों का केन्द्र बिन्दु थे और आज भी उनके साथ बीते क्षण बार-बार कौंध रहे थे। उन्हें सदा ऐसा लगता रहा कि राम का सबसे अधिक स्नेह और विश्वास उन्हें ही प्राप्त है और यही उनके जीवन का लक्ष्य भी रहा।

यह राम का उनके ऊपर विश्वास ही था कि वे कठिन कार्यों के लिये सदा उन्हें ही चुनते थे। ऐसा ही एक बहुत कठिन और अप्रिय कार्य था, सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ना। उन्हें याद आया कि जब इस घोर अप्रिय कार्य के लिये राम ने उनसे कहा था तो उन्होंने बहुत विनम्रता से उनसे कहा था, कि हो सके तो यह कार्य उनसे नहीं, किसी और से कह दिया जाय, इस पर राम ने एक पीड़ा भरी मुस्कान के साथ कहा था, 'तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ लक्ष्मण?'

और अब, जब काल का सन्देश आया, तब भी पहरा देने के लिये उन्होंने मुझ पर ही भरोसा किया। लक्ष्मण को लगा, जाना तो सभी को है, आज या कल। वे जीवन-भर बड़े भाई के पीछे ही चलते आये हैं किन्तु आज वे उनसे आगे हो गये हैं और यह बात ध्यान में आते ही बरबस उनके होंठों पर हलकी सी मुस्कान तैर गयी।

चलते-चलते उन्होंने नेत्र बन्द किये, राम के चरणों का ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया और फिर सीता के मृदु-चरण जिन्हें सारे वनवास के रास्ते वे देखते आये थे, उनका ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया और फिर बन्द नेत्र खोल दिये।

उनहोंने देखा, नेत्र बन्द करके चलते-चलते वे अनजाने ही नदी के पास आ गये थे। लक्ष्मण खड़े हो गये। वे अयोध्या से काफी दूर आ चुके थे। नदी के दोनों ओर दूर-दूर तक फैले हुये मैदान, वृक्ष और खेत दिखाई दे रहे थे। उन्होंने देखा, नदी के किनारे पानी में एक वृक्ष टूटा हुआ पड़ा था। शायद कभी किसी तूफान ने उसे गिरा दिया होगा।

'तूफान बड़े-बड़े वृक्षों को गिरा देता है, फिर मैं क्या हूँ' उन्होंने सोचा और वे हँस पड़े, फिर उसी पेड़ का सहारा लेकर खड़े हो गये।

* * *

लक्ष्मण को माँ सुमित्रा की याद आयी। वे कितनी निरभिमानी और सरल थीं। सदा छोटी बहन की तरह कौशल्या और कैकेयी को मान देती रहीं। कभी भी, अपनी महत्ता दिखलाने का प्रयास नहीं किया। न कभी अपने किसी दुःख की चर्चा, न कोई उलाहने, न असंतोष। हमेशा सहज और सरल व्यवहार, बस।

लक्ष्मण को याद आया कि राम के साथ वन जाते समय उन्होंने सहर्ष अनुमति ही नहीं दी थी बल्कि उन्हें सदैव भाई और भाभी का ध्यान रखने और उनकी सेवा में कमी न आने देने की सीख भी दी थी। यही नहीं, राम के वियोग में विलाप करती कौशल्या को समझाने और धीरज

बँधाने का कार्य भी उन्होंने ही किया था।

वन की बात ध्यान में आते ही उन्हें सुपर्णखा की याद भी आयी। चपल, उच्छृंखल, उद्दण्ड और कामातुर। उसकी अपनी गलती से ही उसकी नाक और कान में चोट लगी थी, किन्तु खिसियायी और स्वयं को अपमानित महसूस करती सुपर्णखा ने उसको किस प्रकार मेरे द्वारा उसके नाक कान काटना बना दिया।

किसी ने यह भी नहीं सोचा कि तलवार से किसी के मात्र नाक, कान काटना कैसे सम्भव है। वह व्यक्ति ऐसे में कसकर प्रतिरोध नहीं करेगा क्या? और इस प्रतिरोध में कम से कम उसके मुख और हाथ पर तो कटने की बहुत सी चोटें आयेंगी ही। सुपर्णखा के हाथ या मुख पर इस तरह की चोटें नहीं थीं। क्या उसने चुपचाप शान्त खड़े होकर अपने नाक और कान कटवा लिये थे?

यह प्रसंग याद आते ही लक्ष्मण को हँसी आ गयी, साथ ही उन्हें यह भी लगा कि यदि यह घटना नहीं होती तो शायद भाभी का अपहरण और फिर रावण का वध भी न होता।

लक्ष्मण को, युद्ध में मेघनाद द्वारा शक्ति का प्रयोग, अपना मूर्छित होना और हनुमान द्वारा औषधि लाना भी याद आया। साथ ही यह भी लगा कि काश, हनुमान वह औषधि न लाये होते तो उन्हें वीर-गति पाने और श्रीराम के चरणों में प्राण त्यागने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता।

उन्हें अपनी बड़ी बहन शान्ता और उनके पति श्रंग भी याद आये और एक बार फिर उर्मिला का ध्यान आ गया। वे अवश्य ही उनकी प्रतीक्षा कर रही होंगी; कभी न समाप्त होने वाली प्रतीक्षा...।

वे सोचने लगे। उर्मिला देर रात तक उनकी प्रतीक्षा करती रहेंगी, फिर अनुचरों को उन्हें ढूँढ़ने के लिये भेजेंगी। इस बीच बेचैन होकर इधर से उधर टहलती रहेंगी, फिर थक कर बैठ जायेंगी।

आँखें बोझिल और सिर भारी हो रहा होगा, और फिर जब देर रात तक कोई अनुचर लौट कर नहीं आयेगा तो रोने लगेंगी, और फिर जब दूसरे दिन उन्हें पता लगेगा कि वे प्राण त्याग चुके हैं तब...।

लक्ष्मण, उर्मिला के दुख भरे रुदन की कल्पना से सिहर उठे। 'उर्मिले, तुम बहुत अच्छी हो! मैं एक बार फिर तुम्हारी पीड़ा का कारण बनने वाला हूँ, मुझे क्षमा करना।' उन्होंने मन ही मन कहा, फिर उन्हें लगा, उर्मिला का और अधिक ध्यान उन्हें कमजोर कर सकता है।

उन्होंने सिर झटका, जैसे वे उर्मिला का ध्यान हटाना चाहते हों। जिस पेड़ के सहारे वे खड़े थे, उसकी ओर देखा, उसकी खुरदरी छाल पर हाथ फिराया। आसमान की ओर देखा और फिर नदी के दूर जाते प्रवाह की ओर देखने लगे। कुछ दूर के बाद नदी थोड़ा घूमते हुये बादलों को छूती दिख रही थी। लक्ष्मण, नदी और बादलों का छूना देख रहे थे, तभी उन्हें लगा जैसे वहीं पर उर्मिला खड़ी हुई हैं। रोते और आँसू पोंछते हुए। लक्ष्मण एक बार पुनः सिहर उठे। उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये।

प्रिय,
तुम्हारा हाथ तो थामे रहा मैं
पर विरह

फिर-फिर विरह देता रहा हूँ
क्षमा करना
और इसको
चिर विरह मत समझ लेना
बादलों के पार
हम फिर से मिलेंगे...!

वे ईश्वर के ध्यान में डूबने का प्रयास करने लगे।' धड़कनों की लय के साथ शरीर का जीवन है और लय टूटनी ही है। शिवत्व उपलब्धि से परे जो है। पर हे ईश्वर, मैं तुम्हारा हूँ; मरूँगा नहीं, विलीन हो जाऊँगा।'

उन्होंने मन ही मन सोचा। धीरे-धीरे ध्यान गहराने लगा और साँसों की गति मन्द पड़ने लगी। कुछ देर तक ऐसी ही स्थिति रही। साँसें धीमी, और धीमी फिर और धीमी और फिर बन्द हो गयीं। शरीर निष्प्राण हो गया।

* * *

लक्ष्मण के प्रयाण का समाचार उर्मिला के लिये किसी वज्रपात से कम नहीं था। वे उनसे अन्तिम बार मिलने ही आये थे, यह उर्मिला को स्पष्ट हो गया था। उनके इस प्रकार जाने के पीछे का कारण पता लगने के बाद, वे दुर्वासा के प्रति क्रोध से भर उठीं।

'दुर्वासा, तुम्हारे अनुचित व्यवहार के कारण मेरे योगी और अति पराक्रमी पति को इस प्रकार प्राण देने पड़े। तुमने मेरे जीवन में तो अन्धकार भरा ही है, मेरे महान जेठ राम को भी भयंकर पीड़ा पहुँचायी है और सारी अयोध्या को भी दु:ख में डुबो दिया है।

अतः मैं उर्मिला, लक्ष्मण की पत्नी, ईश्वर से विनती करती हूँ कि तुम्हें जल्दी मृत्यु न आये। तुम बहुत लम्बे काल तक इस पृथ्वी पर ऐसे ही क्रोध करते, लोगों को श्राप से डराते और उनकी आहें बटोरते घूमते रहो।' उर्मिला ने हाथ जोड़कर ईश्वर का ध्यान करते हुए मन ही मन में प्रार्थना की।

लक्ष्मण के प्रयाण का समाचार मिलने के बाद से उर्मिला मानो अपने होश में नहीं रह गयी थीं। वे जैसे किसी आवेग में चलते हुए राम के कक्ष के सामने पहुँच गयीं।

लक्ष्मण के जाने के समाचार के बाद से ही राम ने सभी को बाहर निकालकर कक्ष के द्वार बन्द कर लिये थे। किसी को भी अन्दर आने की अनुमति नहीं थी।

उर्मिला ने कक्ष के बन्द द्वार देखे और वहीं ठिठक कर खड़ी हो गयीं। कुछ देर तक वे संज्ञाविहीन जैसी स्थिति में खड़ी उस द्वार को देखती रहीं और फिर जैसे होश आ गया हो इस प्रकार चौंक सी उठीं।

'अरे, मैं यहाँ कैसे आ गयी?' उन्होंने स्वयं से कहा और वापस जाने के लिये मुड़ लीं।

राम अपने कक्ष में आँसुओं से भरे बैठे थे। लक्ष्मण के बहुत से चित्र उनके नेत्रों के सामने बार-बार आ रहे थे और उनकी किसी से भी मिलने की इच्छा नहीं थी। अचानक उन्हें लगा जैसे द्वार पर कोई बहुत से उलाहने लिये उनसे मिलने के लिये खड़ा है। वे असहज हो उठे और द्वार की ओर देखने लगे। कहीं कोई नहीं था। कपाट वैसे ही बन्द थे। राम उठे, द्वार तक आये और कपाट खोलकर बाहर निकल आये।

सामने उर्मिला थीं, वापस जाती हुई।

'ओह', राम के मुख से निकला और अचानक उन्हें जैसे अपनी असहजता के कारण का बोध हो गया। वे मौन खड़े उर्मिला का जाना देखते रहे और उनके आँखों से ओझल हो जाने के बाद धीरे से मुड़े और बहुत भारी मन लिये, कक्ष में वापस लौटकर एक दीवार के पास खड़े हो गये। दोनों मुट्ठियाँ कसीं, होंठ भींचे और मुट्ठियाँ दीवार पर मारकर खड़े हो गये,

'उर्मिला, बेटी वह क्या करे जो रो भी नहीं सकता?' कहते हुए उन्होंने सिर एक पल के लिये दीवार पर टिकाया और फिर वहाँ से हट गये।

कण्टकों की राह पर
चलता रहा मन
घाव भी होते रहे पर,
दर्द से लड़ता रहा मन...
किन्तु पीड़ायें
छलक फिर भी गयी हैं।

* * *

उर्मिला वहाँ से लौटकर अपने कक्ष में आयीं। माण्डवी और श्रुतकीर्ति आयी हुई थीं।

उर्मिला को आते देखकर वे उनके पास आ गयीं। उर्मिला आयीं और खड़ी हो गयीं। माण्डवी ने उनके मुख की ओर देखा। उर्मिला मानों शून्य में देख रही थीं।

'उर्मिला!' माण्डवी ने आवाज दी किन्तु उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

'दीदी!' श्रुतकीर्ति ने उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा। अब उर्मिला ने धीरे से कहा,

'हाँ'

माण्डवी ने उर्मिला का कन्धा पकड़कर कहीं बिठाने के लिये ले जाने का प्रयास किया, किन्तु उर्मिला वहीं भूमि पर बैठ गयीं। उर्मिला, माण्डवी की गोद में सिर रखकर रोने लगी।

कुछ देर बाद उन्होंने सिर उठाया और माण्डवी की ओर देखकर पूछा,

'दीदी, नियति इतनी क्रूर क्यों होती है?'

'मैं भी नहीं बता सकती उर्मिला' माण्डवी ने कहा और फिर वे स्वयं भी रो पड़ीं।

16. और बस

लक्ष्मण के प्रयाण से अयोध्या में शोक की लहर दौड़ गयी। बहुत से घरों में उस दिन भोजन नहीं बना। दुर्वासा सभी के निशाने पर थे। लोग उन्हें पानी पी-पीकर कोस रहे थे। किन्तु एक प्रश्न जो सभी के मन में था वह यह, कि राम के लिये सीता के जाने के बाद यह दूसरा बहुत बड़ा आघात था, और क्या वे इसे सह पायेंगे? और इस प्रश्न के उत्तर में सभी एक बिन्दु पर एक मत थे कि उनके लिये इस आघात को सहना आसान तो नहीं होगा।

चित्रा घर में ही थी, जब मानस कहीं बाहर से दुखी, उदास और धीमे कदमों से वापस आया।

'ऐसे क्यों हो?' चित्रा ने पूछा।

'अनर्थ, घोर अनर्थ हो गया।'

अनर्थ की बात सुनकर चित्रा चौंकी।

'क्या हुआ? कहते क्यों नहीं।'

'लक्ष्मण नहीं रहे।'

'क्या? कब नहीं रहे?' चित्रा ने पूछा।

'ऐसा कैसे हो गया?

मानस जो कुछ सुनकर आया था, उसने बताया। सुनकर चित्रा मस्तक पर हाथ रखकर भूमि पर बैठ गयी और रोने लगी।

'चित्रे, तुम्हें क्या लगता है, क्या होगा अब?'

'बहुत बुरा हुआ है, अयोध्या अब अयोध्या नहीं रह जायेगी।'

'क्यों ऐसा क्यों? हमारे महाराज राम तो हैं।'

'हैं, किन्तु वे इस आघात को सह नहीं पायेंगे।'

'हाँ, बाहर लोग भी चर्चा कर रहे थे कि उनके लिये इस आघात को सह पाना बहुत कठिन होगा।'

'नहीं, कठिन नहीं उनके लिये इस आघात को सह पाना असम्भव होगा।'

'तुम कहना क्या चाहती हो चित्रे?' मानस ने कहा।

'पता नहीं क्यों, मुझे लगता है कि वे राज्य त्यागकर यहाँ से कहीं दूर जाना चाहेंगे, रुकेंगे नहीं।'

'पर इस स्थिति में राज्य का भार लेने को राजी ही कौन होगा?'

'हाँ, यह तो है, पर जो भी होगा, अयोध्या के लिये अच्छा नहीं होगा।' कहती हुई चित्रा उठी। पूजा के स्थान पर जाकर बैठ गयी और अयोध्या के दुर्भाग्य को टालने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करने लगी।

* * *

चित्रा की बात सच निकली। लक्ष्मण की मृत्यु और उर्मिला के दुःख ने राम को विचलित कर दिया था। महर्षि अतिबल के दूत को वचन देते समय वे इस तरह के दुष्परिणाम की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, और परिणाम की सम्भावनाओं का ठीक से पूर्वानुमान न लगा पाने का अपराध-बोध भी उन्हें कहीं चुभ रहा था।

उन्होंने, राज्य भरत को सौंपने और स्वयं इस संसार से ही दूर जाने का निश्चय कर लिया। इसके लिये कुछ भी निश्चय करने से पूर्व राम ने भरत, शत्रुघ्न, ऋषि वशिष्ठ और सभी मंत्रियों से विचार-विमर्श करने और उनकी भी सहमति लेने का विचार किया और इस हेतु उन्होंने इन सभी को आमंत्रित किया।

भरत और शत्रुघ्न के पास जब यह आमंत्रण पहुँचा तो उन्हें आश्चर्य भी हुआ और कुछ आशंका भी। राम की मनोदशा का अनुमान उन्हें था। इस मंत्रिपरिषद की बैठक में वे पता नहीं क्या कहना चाहते होंगे? भरत और शत्रुघ्न दोनों के मन में प्रश्न था।

बैठक शुरू हुई तो राम ने कुश और लव के लिये राज्य निर्धारित करने की बात रखी। कुछ देर की चर्चा के बाद कुश को दक्षिण कोशल और लव को उत्तर कोशल के राज्य देने की बात पर सहमति बन गयी।

कुश और लव के राज्यों का निर्धारण होने के बाद राम ने कहा,

'मेरी इच्छा है कि मेरे बाद अयोध्या का राज्य भरत सँभालें।'

राम के इस प्रस्ताव पर सभी को आश्चर्य हुआ। सब जानते थे कि भरत का राम के प्रति जो प्रेम है, उसके कारण वे इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। फिर राम के बड़े पुत्र होने के कारण कुश अयोध्या के स्वाभाविक उत्तराधिकारी थे। स्वयं भरत, राम के इस प्रस्ताव से बहुत विचलित हो उठे।

'आपके दूर जाने के बाद के जीवन की कल्पना भी मेरे लिये एक भयंकर दुःस्वप्न होगी।' उन्होंने कहा।

'भरत, भावुक मत बनो! अयोध्या का साम्राज्य स्वयं में बहुत विशाल हो चुका है और ग्यारह अन्य राज्य इसके अधीन हैं। मेरे बाद भी अयोध्या को एक कुशल और अनुभवी शासक की आवश्यकता है। मेरी दृष्टि में इसके लिये तुमसे अधिक उपयुक्त कोई नहीं है।'

'किन्तु आपके बाद कुश, अयोध्या के स्वाभाविक उत्तराधिकारी हैं'

'कुश अभी परिपक्व नहीं हैं। कुछ दिनों तक उन्हें दक्षिण कोशलङ ही सँभालने दिया जाय और यह भी है कि मैं अब राज्य के कार्यों से मुक्ति चाहता हूँ,' राम ने कहा।

'भइया, आपका निर्देशन मिलने से कुश अयोध्या के साम्राज्य को कुशलतापूर्वक सँभाल लेंगे, वे अत्यन्त बुद्धिमान और वीर हैं।'

भरत की इस बात का राम ने उत्तर नहीं दिया। वे यह नहीं कहना चाहते थे कि उन्होंने इस संसार को भी छोड़ने का निश्चय कर लिया है। कुछ देर तक सभा और चलती रही फिर सर्व-सम्मति से कुश अयोध्या के उत्तराधिकारी घोषित किये गये।

इसके बाद कुश और लव बुलाये गये और उन्हें, उनकी नई जिम्मेदारियों से अवगत कराया गया।

कुश को अयोध्या का उत्तराधिकारी घोषित होने पर वृहद आयोजन होने चाहिये थे, किन्तु राम के नेत्रों के सम्मुख उनके अपने समय का चित्र घूम गया, जब पिता दशरथ द्वारा

उत्तराधिकारी घोषित किये जाने के बाद अचानक ही उन्हें वन जाने का आदेश मिला था।

अपने साथ ले चलने के लिये आग्रह करता सीता का चेहरा और अपने असमंजस के वे कठिन पल भी उन्हें याद आ गये।

राम को और देर करना उचित नहीं लगा। फिर वे स्वयं भी सब कुछ अति शीघ्र ही छोड़ना चाहते थे। उनके पीछे कुश के सम्मुख परिस्थितियाँ विपरीत न हों इसलिये उन्होंने मन ही मन कुछ निश्चय किया, और महर्षि वशिष्ठ से बोले,

'ऋषिवर आप हमारे कुल पुरोहित हैं; सारी सभा यहाँ उपस्थित है। अयोध्या के राज्य पर उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुश को आपका आशीर्वाद यदि अभी ही मिल जाता तो अच्छा रहता।'

अतिबल के दूत के आने के बाद से ही महर्षि वशिष्ठ का मन अयोध्या के भविष्य को लेकर बहुत अधिक आशंकाग्रस्त था, फिर लक्ष्मण का इस तरह प्रयाण और अब राम का इस तरह शीघ्रता करना; वशिष्ठ की आशंकायें और बलवती हो उठीं।

'अभी?' उन्होंने आश्चर्य से कहा।

'हाँ, वृहद् आयोजन बाद में हो जायेगा।' राम ने कहा।

'ठीक है।' कहकर वशिष्ठ ने कुछ सामग्री मँगवायी और मंत्र पाठ करते हुए कुश का तिलक कर बहुत संक्षेप में ही राज्याभिषेक की रस्म पूरी करवा दी। उपस्थित सभी व्यक्तियों ने कुश को बधाइयाँ दीं और इसके बाद सभा विसर्जित हो गयी। सभी वशिष्ठ को छोड़ने के लिये महल के द्वार तक गये।

* * *

महर्षि वशिष्ठ को विदा करने के बाद अन्य सभी ने भी विदा ली, किन्तु भरत और शत्रुघ्न नहीं गये। वे राम के साथ ही खड़े रहे। राम लौटे तो वे भी उनके पीछे-पीछे ही चले आये। राम अपने कक्ष में आये, बैठे और भाइयों को भी बैठने का संकेत किया।

बैठते ही भरत ने राम की ओर देखा। ऐसा लगा जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। राम ने पहल की।

'भरत, मुझे ऐसा लगता है जैसे तुम कुछ कहना चाहते हो!' कहकर वे हलके से हँसे।

'हाँ' भरत ने कहा।

'तो कहो, संकोच मत करो।'

'मैं सोच रहा हूँ कि आपने यह राज्य छोड़ने का निर्णय क्यों लिया?'

'भरत, यह राज्य ही नहीं, जो कुछ भी मेरा नहीं हैं, उसे छोड़ना है; और सच तो यह है छोड़ना शब्द भी ठीक नहीं है, क्योंकि छोड़ने का दुख हो सकता है; इसलिये जो कुछ भी मेरा नहीं है, उसे छोड़ना नहीं उससे मुक्त होना है। मुक्ति में छोड़ने की भाँति दुःख नहीं है अपितु मुक्ति का आनन्द है।'

'आपने कहा सबसे मुक्त होना है।'

'हाँ सबसे।'

'अर्थात?' भरत ने प्रश्न किया।

'सबसे, अर्थात सबसे; मेरा क्या है, भरत?'

राम के इस उत्तर से भरत को झटका सा लगा। उनके मुख पर चिन्ता की लकीरें उभर आयीं।

‘क्या नहीं है आपका?' भरत ने प्रतिप्रश्न किया।

‘क्या है मेरा? यह शरीर भी तो नहीं।'

‘तो इसे भी छोड़ने की बात सोच रहे हैं क्या?'

‘शब्दों से अर्थों में अन्तर पड़ जाता है भरत। मैंने कहा कि मुझे कुछ भी छोड़ना नहीं है, किन्तु मुक्ति तो सबसे पानी है; इस शरीर से भी। यह भी तो मेरा नहीं है। मुक्ति तो इससे भी मिलनी चाहिये।'

‘क्या शरीर से मुक्ति की बात हमारे साथ अन्याय नहीं होगी, और इस अचानक लिये हुए इस निर्णय का कारण क्या लक्ष्मण के जाने का दुख है?' भरत ने कहा।

‘तुमने कई प्रश्न एक साथ किये हैं भरत। किसी के साथ अन्याय की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता, और मेरा निर्णय अचानक लिया हुआ निर्णय नहीं है। लक्ष्मण के जाने के पूर्व ही मेरे मन में यह विचार आ चुका था। अब उनके चले जाने से इस विचार को कुछ और दृढ़ता ही मिली है।

लक्ष्मण के जाने का दुःख किसे नहीं होगा भरत, किन्तु दुख और सुख से परे भी कुछ है, जहाँ तृष्णा, निन्दा, ऊब, स्तुति, हिंसा, अहिंसा, उद्दण्डता, दीनता, करुणा, आश्चर्य, क्षोभ, भोग, या विरक्ति नहीं है; मोक्ष की कामना भी नहीं है। लक्ष्मण के जाने के सम्बन्ध में एक बात और है भरत।'

‘क्या?'

‘इच्छायें बनी रहें और साँसें समाप्त हो जायें तो मृत्यु और साँसें रहते इच्छायें समाप्त हो जायें तो मुक्ति होती है, भले ही इसके बाद साँसें रहें या न रहें। जितना मैंने लक्ष्मण या सीता को जाना है, उस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इनकी मृत्यु नहीं हुई है।'

‘आप ठीक कहते हैं।' भरत ने कहा, फिर थोड़ा रुककर बोले,

‘और महर्षि अतिबल का सन्देश?'

‘उस सन्देश में ऐसा कुछ भी नहीं था जो पहले से मेरे मन में न रहा हो।'

‘एक प्रश्न और! यह शरीर का त्याग, क्या यह आत्महत्या नहीं है? क्या आत्म-हत्या उचित होती है?'

भरत के इस प्रश्न पर राम कुछ देर के लिये मौन हो गये, फिर बोले,

‘मेरे इतना सब कुछ कहने के बाद भी यह प्रश्न शेष रहता है क्या?

मैं यह शरीर नहीं हूँ भरत, और यह मैं केवल कहने के लिये नहीं कह रहा हूँ। मैं शरीर के त्याग नहीं, शरीर से मुक्ति की ओर अग्रसर हूँ।'

‘शरीर के त्याग और शरीर से मुक्ति में अन्तर है क्या?'

‘शरीर का त्याग, शरीर द्वारा होने वाले अनुभवों से छुटकारा देता है, शरीर की भावना से नहीं; और जब शरीर में कष्ट असहनीय हो जाते हैं तो वह मुक्ति जैसा लगता है, किन्तु मुझमें और ईश्वर में अन्तर नहीं है, यह भावना ईश्वर के बोध के निकट लाती है; यही मुक्ति का प्रथम सोपान है और स्वयं में और ईश्वर में अन्तर न होने का विश्वास; ईश्वर के बोध को स्थायी भाव देता है; यह शरीर से मुक्ति ही तो है।'

भरत और शत्रुघ्न इस बात पर कोई प्रश्न नहीं कर सके, किन्तु उनके प्रश्न अभी भी शेष थे। राम ने इसे समझा,

‘प्रश्नों और उत्तरों की कोई सीमा नहीं है, किन्तु प्रश्नों और उत्तरों से परे भी कुछ है, और फिर मुझ पर प्रश्न तो तब खड़े होते जब मैं कुछ करने जा रहा होता।' उन्होंने कहा।

‘फिर?' भरत ने कहा।

‘मैं कुछ करने नहीं जा रहा हूँ, पर इस विराट में प्रति पल कुछ न कुछ होता तो रहता ही है।

प्रश्नों और उत्तरों की तरह ही ज्ञान की भी सीमा नहीं है, और जिस क्षण यह ज्ञान हो जाये कि मुझमें और उस विराट में कोई अन्तर नहीं है, जब सोऽहं, शिवोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि का बोध होने लगे तब शेष सब कुछ निरर्थक हो जाता है। इसके बाद न ग्रहण रहता है, न त्याग; क्योंकि यह विराट न कुछ ग्रहण करता है न त्यागता है।'

कुछ देर के मौन के बाद, राम ने कहा,

‘भरत मेरी ओर देखो'

भरत ने उनकी ओर देखा।

‘भरत, मैं सब दोषों से मुक्त, निष्कलंक, शान्त और प्रकृति से परे हूँ। मैं ही बोध और प्रकाश हूँ। यह जगत मुझसे ही प्रकाशित है। मेरा नाश नहीं है। मैं कहीं भी आता या जाता नहीं हूँ किन्तु सब जगह हूँ और आश्चर्य ही तो है कि यह सारा संसार मुझसे है किन्तु मुझे प्रभावित नहीं करता।

भरत, सब कुछ जानने वाला और साक्षात आनन्द, मैं ही पूर्णता और मैं ही पूर्ण हूँ।

तर्क समाप्त होने के बाद मैं ही बचता हूँ और अन्तिम सम्भाव्य की खोज मुझ पर ही समाप्त होती है।' कहते हुए राम उठे और कक्ष के द्वार की ओर चलने लगे। भरत और शत्रुघ्न भी उठ पड़े।

‘हम आपका अनुगमन करना चाहते हैं।' भरत ने कहा।

‘मैं तुम्हें मना नहीं करता, तुम अपना मार्ग चुनने के लिये स्वतंत्र हो और वह किसी का अनुगमन भी हो सकता है, किन्तु भरत, किसी का भी अनुगमन कुछ दूर तक ही सार्थक हो सकता है। उसका फल भी सीमित ही होगा। सीमा रहित तो स्व को मिटाकर स्वयं ही प्राप्त करना होता है।'

भरत और शत्रुघ्न ने चुपचाप राम को सुना, बोले कुछ नहीं, किन्तु राम इतना कहकर फिर चल पड़े।

वे कक्ष से निकलकर भवन के द्वार तक आये, उसे पार कर पीछे मुड़े, द्वार की डेहरी को छूकर प्रणाम किया और फिर चल पड़े। सुरक्षाकर्मी साथ आने को हुए तो राम ने उन्हें रोका।

‘मेरे साथ आने की आवश्यकता नहीं है।' उन्होंने कहा और फिर पूरी तरह निर्लिप्त भाव से सरयू की ओर चल दिये। उनके अन्दर उत्तेजना, पश्चाताप, दुःख, निराशा या पीड़ा जैसा कुछ भी नहीं था। मन शान्त और निर्विकार था।

भरत और शत्रुघ्न ने उनका साथ नहीं छोड़ा था। वे उनके पीछे ही थे, किन्तु कोई भी पीछे मुड़कर नहीं देख रहा था।

सरयू के तट तक पहुँचकर राम रुके। किनारे पर खड़े होकर प्रवाह को देखने लगे। उन्हें लक्ष्मण का स्मरण हो आया। उनका मुख आँखों के सामने तैर गया। उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये, मानो लक्ष्मण की छवि अपनी आँखों में समेट लेना चाहते हों। कुछ पलों के बाद उन्होंने नेत्र

खोले और जल के प्रवाह कि उलटी दिशा में दखने लगे। दूर तक खुला हुआ आसमान और नदी की रुपहली चादर।

'कहाँ से चली आ रही होगी यह?' राम ने सरयू की ओर देखकर सोचा। सिर को थोड़ा सा पीछे की ओर घुमाया, भरत और शत्रुघ्न की ओर देखकर कहा।

'हिमालय इसी ओर है न?'

वे दोनों यद्यपि शान्त दिख रहे थे, किन्तु अन्दर कहीं तरह-तरह के विचारों से भरे हुए थे। मन में वैराग्य जन्म तो ले रहा था, किन्तु साथ ही कहीं किसी बड़े अनिष्ट की आशंका भी थी। राम के इस प्रश्न से चारों ओर पसरी निस्तब्धता भंग हुई। वे कुछ चौंक से गये, किन्तु साथ ही लगा जैसे दिशा मिल गई है।

'हाँ' भरत ने सक्षिप्त सा उत्तर दिया। राम ने भरत की 'हाँ' सुनी, फिर अयोध्या की ओर देखा। एक पल के लिये सारा परिवार आँखों के सामने आ गया; सीता भी। उनके अधर कुछ तिरछे हुए, हलके से भिंचे और फिर एक हलकी सी मुस्कान आ गई। उन्होंने दृष्टि सरयू के उद्गम के ओर की और फिर उसी दिशा में पग जैसे स्वतः ही बढ़ गये।

भरत और शत्रुघ्न अभी भी उनके पीछे थे।

सरयू के बहते हुए जल में कुछ लहरें उठीं और कुछ दूर जाने के बाद मिट गयीं।

एक पेड़ पर बैठे कुछ पक्षी उड़े और आसमान में कहीं खो गये।

* * *

अयोध्या के अन्य निवासियों की भाँति ही मानस और चित्रा भी दुखी और मुरझाये हुये थे। वे रोते-रोते थक चुके थे।

'चित्रा!'

'हाँ।'

'तुमने ठीक ही कहा था; राम, जिन्होंने बड़े आघात सहे हैं, इस आघात को सह नहीं पायेंगे। वे राज्य त्याग कर कहीं दूर जाना चाहेंगे, रुकेंगे नहीं।'

'मेरा अनुमान था।'

'ठीक ही तो था। वे कहाँ होंगे, चित्रे? सरयू के तट तक ही लोगों ने उन्हें देखा, बस।'

'मैं समझती हूँ, उन्हें लेने के लिये देवता स्वयं स्वर्ग से विमान लेकर आये होंगें।' चित्रा ने कहा, फिर जैसे कुछ याद आ गया हो, वह उठी। अपने पूजा-गृह में सीता के चित्र के साथ ही राम का चित्र भी रखकर हाथ जोड़े और फिर मानस और चित्रा दोनों ही प्रणाम में झुक गये।

जिन्दगी ऐसी कि जिसमें
धार पर तलवार की चलना भी था
फिर साधना भी...
और फिर जलना भी।
सूरज की तरह से
और इस निरपेक्षता से
विदा लेना, चले जाना
नहीं विस्मय

याद रह जाये अगर वह युग-युगों तक।

परिशिष्ट

समय की सीमाओं को लाँघती इस देश की संस्कृति पर प्रहार करते हुए कुछ लोग, राम के होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगाते हुए बहुत ही सहजता से यह भूल जाते हैं कि प्राचीन इतिहास में आप जितना पीछे जाते हैं उतना ही उन घटनाओं के होने के प्रमाण कम होते जाते हैं।

स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल सी० राज गोपालाचारी ही नहीं, अनेक विदेशी विद्वानों ने भी रामायण को ऐतिहासिक दस्तावेज बताया है, इसमें एक नाम दक्षिण एशिया पर शोधपूर्ण अध्ययन करने वालों में भारतविद् सर विलियम जोन्स का भी है। रामायण-कालीन सभ्यता और इतिहास का अध्ययन करने में कुछ और नाम हैं; कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के 'फिलिप लुजेनडॉर्फ', मिशिगन विश्वविद्यालय के 'जो बरखाल्टर' और 'लॉरी सियर्स' तथा स्टॉकहोम विश्वविद्यालय के 'एन अरबॉर बी डबल्यू एल स्मिथ'।

भारत, नेपाल और श्रीलंका में ऐसे बहुत से स्थान हैं जो रामायणकालीन घटनाओं से जुड़े हुये हैं। यद्यपि इनके पुरातात्विक प्रमाण नहीं पाये जा सके हैं किन्तु इस तरह के कोई प्रमाण तो इसाई और इस्लाम मत के प्रवर्तकों के होने के भी नहीं पाये जाते। रामायण में सन्दर्भित कुछ अलौकिक सी लगने वाली घटनाओं पर प्रश्न-चिन्ह लगाने वाले, दूसरे धर्मों में मान्य अलौकिकताओं पर तो प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाते।

रामायण पर हुए शोधों में पाया गया है कि भौगोलिक रूप से रामायण बहुत अधिक सही है। राम के वनगमन के मार्ग के बहुत से स्थल पहचान में आते हैं और अति प्राचीन लगने वाली परम्पराओं से जुड़े हुए भी मिलते हैं।

आज से हजारों वर्ष पूर्व इतने साधन ही नहीं थे कि कोई लेखक इन स्थानों पर घूम-घूमकर अपनी विश्वसनीयता प्रमाणित करने के लिये स्थानीय रीति-रिवाजों का अध्ययन कर पाता, या इन स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण करवा पाता।

राम अयोध्या में पैदा हुये थे और मिथिला, नेपाल में उनका विवाह हुआ था। मिथिला के पास ही जानकी-कुण्ड है जिसे लोग राजा जनक का बनवाया हुआ मानते हैं और श्रद्धा रखते हैं। राम और सीता विवाह के पश्चात मिथिला से लुम्बिनी होते हुए अयोध्या आये थे। लुम्बिनी में सम्राट अशोक का बनवाया हुआ एक स्तम्भ है जिस पर भगवान राम और गौतम बुद्ध के वहाँ आने का उल्लेख है।

दण्डक वन, जहाँ भगवान राम के वनवास का अधिकतर समय बीता वह आज के मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश तक फैला हुआ था।

एक रोचक तथ्य यह है कि कुछ वर्ष पहले चेन्नई के दो वनस्पति-शास्त्रियों ने राम के, अयोध्या से लंका तक के मार्ग की यात्रा वाल्मीकि रामायण में, राम के मार्ग में आने वाली वनस्पतियों के वर्णन की सत्यता जाँचने के लिये की। उन्होंने यह यात्रा मार्ग में पड़ने वाली वनस्पतियों का अध्ययन करते हुये तीन वर्ष लगाकर पूरी की।

इस यात्रा के बाद 'द पॉयनियर' अखबार से वार्ता करते हुए अमृतलिंगम ने कहा-

‘हमनें भगवान राम, सीता और लक्ष्मण के अयोध्या से लंका तक के मार्ग का अनुसरण किया। वाल्मीकि रामायण में वर्णित लगभग सभी वनस्पतियों एवं जानवरों को आश्चर्य-जनक रूप से उनक वर्णित स्थानों पर पाया।'

टेक्सानॉमिस्ट (वनस्पतियों तथा पशुओं के वर्गीकरण के सिद्धान्त के जानकार) ने इनके संस्कृत एवं लैटिन नामों से इसकी पुष्टि की।

इस अनुसंधान के प्रोजेक्ट की सुपरवाइजर एवं निदेशक नन्दिता कृष्णन के अनुसार ‘वाल्मीकि इस मार्ग की वनस्पतियों, जानवरों एवं भौगोलिक स्थितियों को ठीक तरह से जानते थे। रामायण में जिस स्थान पर जिन वनस्पतियों या जानवरों का वर्णन था, हमने उन्हें उन्हीं स्थानों पर पाया।'

इस अध्ययन ने बताया कि वाल्मीकि इन स्थानों की प्राकृतिक दशाओं, भौगोलिक स्थितियों से पूर्ण परिचित थे।

अमृतलिंगम और सुधाकर का यह खोजपूर्ण अध्ययन नाम की पुस्तक के रूप में उपलब्ध है।

यह आश्चर्यजनक ही है कि रामायण विभिन्न रूपों में दुनिया के विभिन्न देशों में मौजूद हैं।

रूस के लेनिनग्राद में बहुत सी पुस्तकों में रामायण की कहानियाँ, रूसी और मंगोलियन भाषा में पाई जाती हैं। साइबेरिया में प्रो० सी० एफ० ग्लोस्टुन की पुस्तक ‘एकेडमी एण्ड साइंसेज़' में वोल्गा नदी के किनारे प्रचलित बहुत सी कहानियाँ हैं; इनमें रामायण की कहानियाँ भी हैं। विभिन्न रूपों में रामायण, रूस के कालमिक नामक राज्य के पुस्तकालयों में उपलब्ध है।

इटली में एस्ट्रोकॉन सभ्यता के अवशेषों की खुदाई के समय बहुत से ऐसे घर मिले जिनकी दीवारों पर कुछ चित्र बने हुए हैं। ये चित्र ७०० ई० पू० के हैं और इनमें पूँछ वाले कुछ लोगों के साथ धनुष बाण लिये हुए दो व्यक्ति हैं और साथ में एक स्त्री। यह एस्ट्रोकॉन सभ्यता कभी इटली के लगभग तीन चौथाई भाग में फैली हुई थी। इटली की राजधानी रोम का नाम भी राम से कितना अधिक मिलता हुआ नाम है।

चीनी भाषा के साहित्य में भी राम का उल्लेख मिलता है। ७४२ ई० की एक पुस्तक में राम के वनवास के लिए जाने पर दशरथ की पीड़ा की कहानी है और सन् १६०० ई० में ‘ हिस-यी-ची' लिखित पुस्तक ‘कपि' में हनुमान का जिक्र है। बौद्ध ग्रन्थ ‘त्रिपटिक' के चीनी संस्करण में रामायण से सम्बन्धित ‘अनामकं जातकम्' और ‘दशरथ कथानम्' नाम की दो रचनायें मिलती हैं।

फादर कामिल बुल्के के अनुसार, तीसरी शताब्दी में ‘कांग-सेंग-हुई' ने ‘अनामकं जातकम्' का चीनी भाषा में अनुवाद किया था, यह अनुवाद ‘लियेऊ - तुत्सी - किंग' नाम की पुस्तक में मौजूद है, किन्तु ‘अनामकं जातकम' का मूल पाठ आज उपलब्ध नहीं है। इस कथा में किसी नाम का उल्लेख नहीं है। इसमें रामायण की कई प्रमुख घटनाओं के स्पष्ट संकेत हैं; यद्यपि इन पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

‘दशरथ कथानम' के अनुसार राजा दशरथ जम्बू द्वीप के सम्राट थे। राम का नाम लोमो, लक्ष्मण का नाम लोमन है। लोमन में नालोयेन (नारायण) का बल और पराक्रम था और ‘सेन'

और 'रा' नाम की अलौकिक शक्तियाँ थीं। भरत का नाम पोलोरो और शत्रुघ्न का नाम शत्रुघ्न ही है।

इस कथा में भी रामायण की बहुत सी घटनाऐ नहीं हैं किन्तु पूरी कथा रामायण से बहुत अधिक मिलती हुई है। इसमें राजा का रानी पर आसक्त होना, उनका रानी को वचन देना, लोमो को राजसिंहासन, रानी को रास न आना, रानी द्वारा अपने पुत्र पोलोरो के लिये राज्य और लोमो के लिये वनवास माँगना, राजा का स्वर्गवास और पोलोरो का परदेस में होना, वहाँ से वापस आने पर राजा बनने से इंकार, माँ का विरोध, जंगल जाकर लोमो को मनाकर वापस लाने का प्रयास, फिर उनकी चरण-पादुका लाकर सिंहासन पर स्थापित करना और लोमो के वापस लौटने के बाद उन्हें ही राज्य सौंप देना आदि बहुत कुछ है।

स्वयं बौद्ध मत में 'दशरथ जातक' है, जो २०० ई० पू० लिखा गया है। इसमें भी राम और सीता का उल्लेख है। यद्यपि इसमें उनके कद को बहुत अधिक गिरा दिया गया है, किन्तु कम से कम उनके होने पर ही प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाया गया है।

जैन धर्म में राम कथा पर विमला सूरी, संघदासा, गुणभद्र आदि के कार्य हैं। इसके अतिरिक्त रविसेन की पद्मपुराण, स्वायंभु की पॉमाचरियु, हरिसेन का कथा-कोष व पुष्पदन्त का महापुराण आदि में रामायण की कथा और उसके पात्रों पर विस्तृत आलेख हैं।

जैन ग्रन्थों में हनुमान पर भी चर्चा है। उनकी माँ का नाम अंजना और पिता का नाम पवंजय है, यद्यपि हनुमान के जन्म और उनके पालन-पोषण की कथा कुछ भिन्न है।

जैन ग्रन्थों के अनुसार राम, ६३ प्रमुख और सुप्रसिद्ध शलाका पुरुषों में एक थे। इन ६३ शलाका पुरुषों में बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायणों के नौ संस्करण हैं। राम, आठवें बलभद्र, लक्ष्मण और रावण आठवें नारायण और प्रतिनारायण थे।

जैन मत में राम, लक्ष्मण और रावण को बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव भी कहा गया है। जैन धर्म की कथा में एक अन्तर यह है कि रावण का वध राम ने नहीं लक्ष्मण ने किया था, क्योंकि राम अहिंसक थे और बाद में वे जैन मुनि बन गये थे तथा उन्हें मोक्ष मिला था। इनके अनुसार शम्बूक का वध लक्ष्मण द्वारा गलती से हो गया था।

पुष्पदन्त महापुराण में बलराम और कृष्ण का जिक्र भी है। इस महापुराण के अनुसार वे बाईसवें तीर्थंकर नेमि के समकालीन ही नहीं थे, कृष्ण नेमि के चचेरे या ममेरे भाई भी थे। इसमें महाभारत का वर्णन भी है। इसके अनुसार अन्त में पाण्डव भी नेमि की भाँति ही तपस्वी बन गये थे और निर्वाण को प्राप्त हुये थे।

जैन धर्म ग्रन्थ पद्मपुराण के अनुसार राम का जैन नाम ही पद्म है। संघदासा के अनुसार भविष्यवाणी थी कि मन्दोदरी की पहली सन्तान रावण के वंश का विनाश करने वाली होगी। सीता वही सन्तान थी, इस कारण रावण ने पैदा होते ही अपने अमात्य को उसे मार डालने के लिये सौंप दिया था, किन्तु उसने बच्ची को, मिथिला के राजा जनक को यह बताकर सौंप दिया कि यह उनके हल के द्वारा खेत में बनायी गड्ढेदार लाइनों (जिन्हें 'सीता' भी कहते थे) के पास मिली है। इस प्रकार जनक और उनकी पत्नी धारिणी, सीता के पालक माता-पिता बने।

भगवान राम इक्ष्वाकु के वंशज बताये जाते हैं। संस्कृत शब्द इच्छवाकु का समानार्थी पाली शब्द है ओक्काका। गौतम बुद्ध का शाक्य वंश इन्हीं ओक्काका से है और मान्धाता और राजा सगर, इन दोनों ही वंश परम्पराओं में शामिल हैं।

यह इक्ष्वाकु वंश जिसे सूर्यवंश भी कहते हैं, जैन धर्म में बहुत अधिक महत्त्व रखता है। जैन धर्म के चौबीस में से बाईस तीर्थंकर इसी वंश के हैं।

थाईलैण्ड एक बौद्ध बहुल देश है, किन्तु थाईलैण्ड के लिये रामायण, जिसे वहाँ रामाकीन के नाम से जाना जाता है, उसकी संस्कृति का प्रतिनिधि महाग्रन्थ है। यहाँ का 'वाट फ्रा काएव' या 'हरित बुद्ध मन्दिर' बौद्धों का सबसे प्रतिष्ठित तीर्थ स्थान है। यह मन्दिर शाही महल के पास राजधानी बैंकाक में है, जिसमें बुद्ध की मूर्ति हरे रंग की है। परिसर में सौ से अधिक इमारतें हैं। यह मन्दिर परिसर लगभग दो किलोमीटर लम्बी दीवार से घेरा गया है और आश्चर्य की बात यह है कि इस पूरी दीवार पर रामायण का चित्रांकन है, जो कला, रंगों और गुणवत्ता के हिसाब से बहुत ऊँचे स्तर का है। ये चित्र दीवार के १७८ हिस्सों पर बने हैं। कुछ दशकों के अन्तराल पर इनका पुनरुद्धार किया जाता रहता है।

दक्षिण एशिया के कई देशों में हनुमान एक साहसी एवं क्रियाशील नायक के रूप में शताब्दियों तक स्थापित रहे हैं। थाई मुक्केबाजी में हनुमान के नाम से जुड़े नाम वाले प्रहारों की एक शृंखला है। वर्तमान थाई राजा का शासकीय नाम राजाराम (नवम) है।

इण्डोनेशिया बहुत अधिक मुस्लिम आबादी वाला देश है, किन्तु वहाँ छाया कठपुतली विधा में रामायण का मंचन बहुत लोकप्रिय है।

फिलीपीन्स का प्रसिद्ध सिंकिल नृत्य, वहाँ की राम-कथा पर आधारित है। प्राचीन फिलीपीन्स द्वीप-समूहों में वहाँ की भाषा में लिखित राम-कथा को ' महाराडिया लवन' के नाम से जाना जाता है।

यहाँ के मुसलमानों के कुछ वर्गों का अभी भी रामायण से जुड़ाव है और 'मैरीनियो' व ' मागन्दनाओ या सुलू' मुसलमानों के मध्य रामायण पर आधारित बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं।

एक बहुत ही अचम्भित करने वाली बात यह भी है कि वहाँ कुछ लोगों के प्रोफाइल में 'रामायन' शब्द सरनेम की तरह मिलता है, जैसे-

एंजेला कुकी रामायन, अज रामायन, ग्लेरी जोल्ट रामायन, डेनिस रामायन आदि।

मलेशिया में रामायण, साहित्यिक और लोक-कथा दोनों ही रूपों में पायी जाती है। यहाँ पर रामायण, सामाजिक शिक्षा के लिये प्रयोग की जाती है। यहाँ पर राम का धार्मिक स्वरूप नहीं है। वे अच्छाई, नैतिकता और न्याय के आदर्श के रूप में स्थापित हैं, जिन्होंने अपने इन गुणों के कारण बुराई पर जीत प्राप्त की।

मलय लोगों की रामकथा में उनकी अपनी सभ्यता भी परिलक्षित होती है। मलय लेखक और कथा-वाचक लक्ष्मण को राम से अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार राम नैतिक और गुणी तो थे किन्तु पीछे रह जाते थे और लक्ष्मण साहसी और निर्णायक रूप से प्रतिक्रिया देने वाले थे, अतः मलय लक्ष्मण की अधिक प्रशंसा करते हैं। वे राम को तो राम ही, किन्तु सीता को 'शिन्तो' कहते हैं।

सन १९८९ में मलेशिया के उत्तरी प्रान्त पेराक में थाई सीमा के निकट सबसे बड़े राम-मन्दिर का निर्माण हुआ जो उसकी राजधानी कुआललम्पुर से २५० किलोमीटर दूर है। इसमें १००१ मूर्तियां और चित्र हैं।

मलेशिया में राम कथा पर आधारित छाया कठपुतली खेल मनोरंजन के लिए बहुत लोकप्रिय है। इसको करने वाले सभी लोग मुसलमान ही होते हैं, यद्यपि रूढ़िवादी मुसलमान

इसका बहुत विरोध करते हंै। वे इसमें बजाये जाने वाले संगीत का भी बहुत अधिक विरोध करते हैं। इस संगीत में गॉन्ग आरकेस्ट्रा से उत्पन्न संगीत की ध्वनि समाधि में जाने जैसा असर पैदा करती है।

राम और राम कथा के साथ भारतीय मन का जुड़ाव इतना स्वाभाविक है कि हम इसे स्वतः स्फूर्त मान सकते हैं, किन्तु प्रश्न तो यह है कि इस कथा और इसके चरित्रों में इतना आकर्षित करने वाला क्या था कि मंगोलिया, जापान, बर्मा, लाओस, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया, फिलीपीन्स आदि एशिया के बहुत से देशों ने इसे किसी न किसी रूप मे अपनाया है।

यह बात समझने की है कि कोई काल्पनिक, पौराणिक-चरित्र विश्व के इतने बड़े हिस्से में पहुँचकर न इतने अधिक समय तक जीवित रह सकता है और न सम्मान ही पा सकता है।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने उत्तर-काण्ड में लिखा है कि विष्णु के साथ भयंकर युद्ध में राक्षस सुकेशु और देववती के तीन पुत्रों माल्यवान, सुमाली और माली में से माली मारा गया और माल्यवान और सुमाली लंका छोड़कर पाताल में रहने चले गये। 'पाताल' शब्द को यदि समझने का प्रयास करें तो यह 'पद-तले' के आस-पास लगता है।

इसी सत्र के उन्तीसवें श्लोक में वे लिखते हैं कि सुमाली दीर्घकाल तक अपने परिजनों के साथ पाताल में विचरण करता रहा। यह सुमाली ही रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण और सूपर्णखा का नाना था।

उत्तर पूर्वी अफ्रीका के देश सोमालिया में सुमाली-लैण्ड नामक एक स्वशासित प्रदेश है और उत्तर अमेरिका के देश मेक्सिको पर डब्ल्यू एच. प्रेस कोट ने एक पुस्तक लिखी है। इसमें वे लिखते हैं कि वहाँ पर अजटेक सम्प्रदाय के लोग मानते हैं कि उनके देश में दैवीय आपदा से ग्रस्त पूर्व दिशा से एक खूबसूरत व्यक्ति आया था, जिसने उन्हें प्रगतिशील सभ्यता; के बहुत से पक्षों से परिचित कराया था, जिसके फल-स्वरूप वह समय उस प्राचीन काल का स्वर्णिम काल कहा गया, किन्तु वह व्यक्ति अचानक ही पुनः किसी दैवीय कारण से वापस अपने देश चला गया।

प्रेसलैण्ड लिखते हैं कि यह कोई जनश्रुति नहीं है, अपितु अभिलेखों के रूप में भी उपलब्ध है। स्वाभाविक ही इस घटना के तार भारतीय सभ्यता से जुड़ते हैं।

लंका से सोमालिया की दूरी ३८२८ कि०मी० और सोमालिया से मैक्सिको १७३४४ कि०मी० दूर है और सोमाली-लैण्ड और मैक्सिको दोनों ही समुद्र के किनारे हैं।

उपरोक्त सारे तथ्यों को देखते हुए इस बात की प्रबल सम्भावना बनती है कि सुमाली, लंका से, पहले निकट के स्थान सोमाली-लैण्ड गया और वहाँ कुछ समय तक रहने के बाद किन्हीं कारणों से वहाँ से भी बहुत दूर मैक्सिको में जा कर रहने लगा।

भारतीय दर्शन राम और कृष्ण में भेद नहीं करता। राम का प्रभाव क्षेत्र कभी बहुत दूर-दूर तक था और कृष्ण, हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे कुछ धर्मों में भी किसी न किसी रूप में स्वीकार्य हैं।

बौद्ध धर्म की जातक कथाओं में गौतम बुद्ध और उनके शिष्यों के पूर्व जन्मों की कथाओं का वर्णन है। इसमें कृष्ण का धम्म सेनापति या धर्म के प्रमुख सेनापति के रूप में वर्णन है। इसमें भी कृष्ण, कंस को मारते हैं और अपने सुदर्शन चक्र की सहायता से सारे जम्बूद्वीप (प्राचीन भारतवर्ष) पर अधिकार कर लेते हैं।

नारा, जापान में ७९२ ई०पू० सम्राट सोमू द्वारा बनवाये तोदाई-जी मन्दिर के ग्रेट बुद्धा हॉल में बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण का चित्रण है। बौद्ध धर्म के जापानी स्वरूप में कृष्ण को नटखट, प्रिय और बुद्धिमत्ता की मूर्त जैसे बालक के रूप में देवताओं में स्थान दिया गया है।

बहाई धर्म, कृष्ण को ईश्वर का प्राकट्य या पैगम्बरों की शृंखला में से एक मानता है। वहाँ कृष्ण को अब्राहम मोज़ज, जोरास्टर, बुद्ध, मुहम्मद, ईसा मसीह और बहाई धर्म के प्रवर्तक बहाउल्ला के समकक्ष स्थान दिया गया है।

अहमदिया इस्लाम में भी इसके संस्थापक मिर्जा गुलाम अहमद ने कृष्ण को ईश्वर के पैगम्बर के रूप में बताया है। वे कृष्ण को मनुष्य और ईश्वर के मध्य सामंजस्य बिठलाने वाले के रूप में देखते हैं।

मिर्जा गुलाम अहमद ने लिखा है कि कृष्ण की मुरली वास्तव में उनके द्वारा दिया गया ईश्वरीय ज्ञान है। वे लिखते हैं, 'कृष्ण को जितना मैंने जाना है उसके अनुसार वे सचमुच इतने महान थे कि उनकी अन्य अवतारों से तुलना नहीं की जा सकती। वे अपने समय के पैगम्बर थे, जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान स्वयं ईश्वर ने दिया था।'

१९वीं शताब्दी के कई नये धार्मिक आन्दोलन भी कृष्ण को सम्मान के साथ स्वीकार करते हैं; इसमें थियोसॉफिस्ट्स; प्रमुख हैं। वे कृष्ण को मैत्रेय (प्राचीन ज्ञान के मूर्तरूप) का अवतार और मानवता के लिए आध्यात्मिक ज्ञान देने वाला एक प्रमुख गुरु मानते हैं।

ब्लावट्स्की ने १९ वीं शताब्दी में थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की थी।

गीता में भगवान कृष्ण की शिक्षाओं और थियोसॉफी में आश्चर्यजनक रूप से साम्य है। थियोसॉफी का मार्गदर्शक सिद्धान्त कहता है 'अपने अन्दर देखो, वहाँ प्रकाश है, चेतना है, ज्ञान है, बोध है और ईश्वर है।'

कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी मन तो शायद किसी भी प्रमाण से सन्तुष्ट नहीं होंगे और वे शायद यह भी नहीं मानेंगे कि इतिहास प्रमाणों से परे भी होता है, किन्तु जो मन पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं हैं उनके लिए राम और कृष्ण के होने के प्रमाण जगह जगह बिखरे पड़े हैं।